ऑन लिबर्टी का हिन्दी अनुवाद (अंतिम अध्याय)

जॉन स्टुअर्ट मिल

अनुवाद - आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका पहला ग्रन्थ ।

स्वाधीनता ।

प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जान स्टुअर्ट मिलके
अँगरेजी ग्रन्थका अनुवाद ।

अनुवादक—
सरस्वती-सम्पादक
पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

माघ, १९७७ वि० ।
जनवरी, १९२१ ।

द्वितीयावृत्ति ।]

[मूल्य दो रुपया । ~~जिल्द सहितका २॥)~~

जॉन स्टुअर्ट मिल की गणना उन्नीसवीं सदी के सर्वाधिक प्रभावशाली विचारकों में की जाती है। उनकी पुस्तक **ऑन लिबर्टी** को विचारों के इतिहास में क्लासिक का दर्जा प्राप्त है। मिल ने इसमें व्यक्ति के निजी 'स्पेस' और उसकी सामाजिक जवाबदेही के उस मूलभूत प्रश्न से जूझने की कोशिश की है, जिसका सामना हर समाज को अपने ढंग से करना पड़ता है। इसे 'व्यक्तिगत स्वातंत्र्य' के घोषणापत्र के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। यह एक ऐसे विकसित होते पूंजीवादी सामाजिक परिवेश की उपज है जो सामंती जकड़नों से मुक्ति पाने के लिये निर्णायक संघर्ष कर रहा था। इसमें उस संघर्ष की मुक्तिकामी संभावनाओं के साथ-साथ उसके अपने अंतर्विरोध भी मुखर रूप में दर्ज हुए हैं। प्रबोधन की परम्परा के एक सच्चे वारिस की तरह मिल मानवीय स्वतंत्रता को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास करते हैं, लेकिन उतना ही निर्णायक जोर वे प्रबोधन के ही एक अन्य मूल्य 'समानता' पर नहीं देते जिसके चलते उनकी स्वतंत्रता मात्र वैधानिक स्वतंत्रता बनकर रह जाती है। मिल पूंजीवाद के उदार प्रवक्ता भी थे और 'उपयोगितावादी' दर्शन के पैरोकार भी। प्रस्तुत पाठ में मिल के सरोकारों के साथ-साथ पाठक उनके अंतर्विरोधों और दुविधाओं को भी स्पष्ट रूप से लक्षित कर सकते हैं, शराब और शिक्षा से संबंधित प्रसंग इसके उदाहरण के तौर पर देखे जा सकते हैं। इसी तरह प्रस्तुत पाठ में विन्यस्त 'व्यक्ति' और उसकी 'आजादी' की उस अभिजातवर्गीय छवि पर भी गौर करने की आवश्यकता है जो हमारे समकालीन विमर्शों में भी बड़े प्रभावशाली ढंग से अपनी जड़ जमाए बैठी है।

आचार्य **महावीर प्रसाद द्विवेदी** ने बेहद प्रासंगिक मानते हुए 1905 में इस पुस्तक का अनुवाद किया था, अतः भाषा और शैली के लिहाज से भी इसका एक खास महत्व है; लेकिन कम से कम पिछले पचास वर्षों से यह अनुवाद अनुपलब्ध है। द्विवेदी जी के सामने तत्कालीन पाठकों के लिये इसे सरल और संप्रेषणीय बनाने की चुनौती भी थी, जिसे उन्होंने पुस्तक की भूमिका में स्वीकार भी किया है। उनके अपने शब्दों में ''मतलब को ठीक ठीक समझाने के लिये कहीं कहीं पर हमने एक ही बात को दो दो तीन तीन तरह से लिखा है।'' इस प्रक्रिया में अनुवाद मूल पुस्तक की तुलना में कम से कम डेढ़ गुना बड़ा हो गया है। इसे पढ़ते हुए आपको मिल की बजाय द्विवेदी जी की तत्कालीन शैली का ही आभास अधिक होगा।

पुस्तक का **पांचवा अध्याय** 'प्रयोग' यहां प्रस्तुत है। पुस्तक में मिल ने जिन सिद्धांतों का विवेचन किया है यह अंतिम अध्याय उन्हीं सिद्धांतों को व्यवहार रूप में लागू करने के विषय में है। पुस्तक के निष्कर्षों और उनकी उपादेयता को जांचने के लिहाज से यह अध्याय विशेष महत्व का है। यह अंश हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा प्रकाशित पुस्तक के द्वितीय संस्करण (1921) से लिया गया है। (**अपवाद स्वरूप वर्तनी में हुए कुछ अपरिहार्य परिवर्तनों के अलावा हमने पाठ को यथासंभव मूल रूप में ही पुनर्प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।**)

Ed. - debateonline

प्रयोग

जिन सिद्धांतों का वर्णन मैंने यहां तक किया वे सांसारिक व्यवहारों के आधार हैं। इन्हीं सिद्धांतों को दूर तक आधार मान कर व्यवहार की बातों का विवेचन करना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखने से ही राजनीति और समाजनीति की सब शाखाओं में इन सिद्धांतों की योजना की जा सकेगी। ऐसा न करने से सारी मेहनत बरबाद जायगी। उससे कोई फायदा न होगा। व्यवहार से सम्बंध रखनेवाली बातों की जो मैं थोड़ी सी आलोचना करना चाहता हूं वह सिर्फ दृष्टांत के लिए है। मैं सिर्फ इस बात को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण देना चाहता हूं कि किस तरह मेरे निश्चय किये हुए सिद्धांतों की योजना व्यावहारिक विषयों में होनी

चाहिए। मेरा मतलब अपने सिद्धांतों की सविस्तार योजना करके बतलाने का नहीं है। मैं अपने सिद्धांतों के सभी प्रयोग उदाहरणपूर्वक नहीं बतलाना चाहता। मैंने दो सिद्धांतों या तत्वों का विवेचन किया है। वही इस पुस्तक के सारभूत हैं। उनका मतलब और उनकी व्याप्ति अर्थात् सीमा, को अच्छी तरह लोगों के ध्यान में लाने के लिए, मैं नमूने के तौर पर, प्रयोग के कुछ उदाहरण देता हूं। यह न समझिये कि मैं सब तरह के प्रयोगों की - सब प्रकार की योजनाओं की - विवेचना करने जाता हूं। प्रयोग के जो नमूने मुझे बतलाने हैं उनसे यह बात ध्यान में आ जायगी। कि किस सिद्धांत का कहां प्रयोग करना चाहिए और जहां यह संशय उपस्थित हो कि किसी एक सिद्धांत से काम लिया जाय या दूसरे से वहां किस तरह निश्चय करना चाहिए।
मेरा पहला सिद्धांत यह है कि आदमी के जिस काम से उसे छोड़ और किसी का सम्बंध नहीं है उसके लिए वह समाज के सामने उत्तरदाता नहीं। यदि कोई आदमी ऐसा काम करे जिससे सिर्फ उसी का सम्बंध हो, पर जो समाज को पसंद न हो, तो समाज उसे उपदेश दे सकता है; उसे समझा बुझा सकता है; दिलासा देकर या प्रार्थना करके उसके खयाल बदल सकता है; और यदि अपने हित के लिए उसकी संगति से दूर रहने की जरूरत हो तो वह दूर भी रह सकता है। ऐसे मौके पर समाज यदि कुछ कर सकता है तो इतना ही कर सकता है। इस तरह के किसी काम से घृणा या अप्रीति जाहिर करने के लिए समाज के पास सिर्फ यही साधन है। दूसरा सिद्धांत यह है कि जिन बातों से दूसरों का सम्बंध है उनके लिए हर आदमी समाज के सामने उत्तरदाता है। किसी आदमी की इस तरह की कोई बात यदि समाज को हानिकारक जान पड़े तो उस हानि से बचने के लिए समाज, जरूरत के अनुसार, अपराधी को कानूनी सजा दे सकता है।

पहले इस बात को दिल से दूर कर देना चाहिए कि दूसरे के हित की हानि, या हानि की सम्भावना, होने ही से समाज को किसी किसी आदमी के बर्ताव में दस्तंदाजी करने का अधिकार मिल जाता है। यह बात नहीं है। हानि या हानि की संभावना ही के कारण दूसरे के कामकाज में दस्तंदाजी करना हमेशा उचित नहीं हो सक्ता। बहुत दफे ऐसा होता है कि किसी उचित अर्थात् न्याय संगत, मतलब की सिद्धि के लिए काम करते समय आदमी को दूसरे की हानि करना, या उन्हें दुख या प्रतिबन्ध करना, पड़ता है। पर इस तरह की हानि, दुख या प्रतिबंध, बहुत जरूरी अतएव अनिवार्य्य, होने के कारण उचित होता है। इस तरह का परस्पर हितविरोध बहुधा समाज की व्यवस्था ठीक न होने से होता है। जबतक ऐसी व्यवस्था रहती है, अर्थात् जबतक समाज की व्यवस्था में उन्नति नहीं होती, तबतक यह हितविरोध होता ही रहता है। कुछ हितविरोध अनिवार्य्य हैं, वे बन्द ही नहीं हो सकते। समाज की बनावट, अर्थात् व्यवस्था चाहे जितनी अच्छी हो वे अवश्य ही होते हैं। जिस व्यवसाय को बहुत आदमी करते हैं उसमें कामयाबी होने से, चढ़ाऊपरी के इम्तहान पास करने से, और जिस चीज की प्राप्ति के लिए दो आदमी बराबर कोशिश कर रहे हैं उसे उनमें से एक को दिला देने से जो लाभ होता है। वह दूसरों की हानि होने या दूसरों की मेहनत अकारथ जाने या दूसरों की आशा का नाश होने ही से होता है। पर, यह बात सबको मान्य है कि इस तरह के परिणाम की परवाह न करके अपने उद्देश की सिद्धि करना ही मनुष्य मात्र के लिए हितकारक है। मतलब यह कि समाज इस बात को नहीं कबूल करता कि इस तरह चढ़ाऊपरी करने वालों में से जिनका नुकसान हो जाय उनको उस नुकसान से बचाने का प्रबंध न

करना कानून या नीति की दृष्टि से अनुचित है। हां, यदि अपने फायदे के लिए - अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोई आदमी छल-कपट-विश्वासघात या जबरदस्ती करने लगे तो उसे रोकने का प्रबंध समाज जरूर करेगा। क्योंकि ऐसे साधनों से अपना फायदा कर लेना मानो सब लोगों के साधारण हित में बाधा डालना है।

व्यापार एक सामाजिक व्यवसाय है। जो आदमी सर्वसाधारण से किसी चीज के बेचने की पतिज्ञा करता है वह एक ऐसा काम करता है जिससे और लोगों के, और साधारण रीति पर सारे समाज के, हिताहित से सम्बंध रहता है। अतएव यदि तत्व दृष्टि से देखा जाए तो उसका व्यवसाय समाज के अधिकार में आ जाता है; अर्थात् उसके व्यवसाय और बर्ताव पर समाज की सत्ता पहुंच जाती है। इसी आधार पर एक दफे लोगों ने यह निश्चय किया था कि जितनी चीजें अधिक काम की हैं उनकी कीमत ठहराना और उनके बनाने की रीति के नियम भी जारी करना सरकार का कर्तव्य है। परन्तु बहुत दिनों तक झगड़ा होने के बाद अब यह बात लोगों के ध्यान में अच्छी तरह आ गई है कि बिक्री के लिए माल बनाने, बेचने और मोल लेनेवाले को पूरी स्वतंत्रता देने ही से सस्ता और अच्छा माल मिल सकता है। यदि मोल लेने वाले को इस बात की आजादी रहेगी कि जहां उसका जी चाहे वहां वह खरीद करे तो माल बनाने और बेचनेवाले जरूर अच्छा माल रक्खेंगे और उसे सस्ता भी बेचेंगे क्योंकि उनको यह डर रहेगा कि यदि उनका माल अच्छा न होगा, या यदि वे उसे मंहगा बेचेंगे, तो लेनेवाला उनके यहां खरीदेगा क्यों? उसे जो कुछ दरकार होगा वह दूसरे से ले लेगा। इसका नाम व्यापार-स्वातंत्र्य अथवा अनिर्बन्ध व्यापार है। इस पुस्तक में हर व्यक्ति की - हर आदमी की - स्वाधीनता के सम्बंध में जो सिद्धांत मैंने निश्चित किये हैं उनके प्रमाण यद्यपि अनिर्बन्ध व्यापार से सम्बंध रखने वाले सिद्धांतों के प्रमाणों से जुदा हैं, तथापि इस दोनों तरह के प्रमाणों का आधार एक ही सा है - यह नही है कि एक का आधार अधिक मजबूत हो और दूसरे का कम। व्यापार से, और बेचने के लिए माल तैयार करने से, सम्बंध रखने वाले जितने नियम हैं उनकी गिनती प्रतिबंधों में ही है। और जितने प्रतिबन्ध हैं साधारण तौर पर सभी बुरे हैं। यह जरूर है कि व्यापार वाले प्रतिबन्ध आदमियों के उस व्यवसाय से सम्बंध रखते हैं जिसका प्रतिबन्ध करना समाज का काम है। परन्तु जिस मतलब से इस तरह के प्रतिबन्ध किये जाते हैं। वह मतलब ही नहीं सिद्ध होता इसी से मैं उन्हें हानिकारक और बुरे समझता हूं। व्यक्ति स्वातंत्र्य और व्यापार स्वातंत्र्य में फर्क है। दोनों के सिद्धांतों में परस्पर बड़ा अन्तर है। अतएव इस बात को मैं नहीं मानता कि जो प्रतिबन्ध व्यक्ति-स्वातंत्र्य के लिए बुरे हैं वे व्यापार-स्वातंत्र्य के लिए भी बुरे हैं। उदाहरण के लिए इन बातों का निर्णय करना एक बिल्कुल ही निराला विषय है कि जो लोग धोखा देने के इरादे से अच्छे और बुरे, दोनों तरह के माल को मिलाकर बेचते हैं उनके पंजे से मोल लेनेवाले को बचाने के लिए समाज को कितना प्रतिबन्ध करना चाहिए; अथवा सफाई रखने के सम्बंध में, या जो लोग ऐसे काम करते हैं जिनमें अंग-भंग होने या प्राण जाने का डर रहता है उनकी रक्षा के लिए उनसे काम लेनेवालों के साथ बंदोबस्त करने के सम्बंध में, कहां तक सख्ती करनी चाहिए। इन स्वतंत्रता-सम्बंधी बातों का विचार करने में इस बात को याद रखना चाहिए कि लोगों की स्वतंत्रता का प्रतिबन्ध करने की अपेक्षा उनको अपना काम अपनी इच्छा के अनुसार करने देना हमेशा अधिक अच्छा होता है। हां, प्रतिबन्ध करने से यदि समाज का अधिक फायदा होता हो तो तत्वदृष्टि से वैसा करना अनुचित नहीं। पर व्यापार के प्रतिबन्ध की कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे लोगों की

स्वतंत्रता में प्रतिबन्ध होता है। ऐसी बातों को बचाना चाहिए। उनका प्रतिबन्ध करना उचित नहीं। उदाहरण के लिए ऊपर बयान किया गया शराब पीने के खिलाफ कानून; चीन को अफीम भेजने की मनाई; सब तरह के जहर न बेचने का हुक्म ये सब प्रतिबन्ध अनुचित हैं। मतलब यह कि जिस प्रतिबन्ध से किसी चीज का मिलना दुर्लभ या असम्भव हो जाय वह प्रतिबन्ध मुनासिब और लाभदायक नहीं माना जा सकता। ये प्रतिबन्ध इस कारण अनुचित नहीं कि ये व्यापार के लिए हानिकारक हैं, किन्तु इस कारण अनुचित हैं कि इनसे उन लोगों की स्वतंत्रता में बाधा आती है जो इन चीजों को मोल लेना चाहते हैं।

इन उदाहरणों में से जहर बेचने के उदाहरणों में एक और बात का भी विचार जरूरी है। वह यह कि इस विषय में पुलिस की दस्तंदाजी की हद कौन सी होनी चाहिए? जहर खाने से जो दुर्घटनाएं या जुर्म होते हैं उनका प्रतिबन्ध करने के लिए लोगों की स्वतंत्रता का कहां तक छीना जाना मुनासिब होगा। जुर्म हो जाने पर मुजरिम का पता लगा कर उसे सजा देना जैसे गवर्नमेंट का बहुत जरूरी काम है वैसे ही जुर्म होने के पहले ही उसे न होने देने की खबरदारी रखना भी है। परन्तु जुर्म हो जाने पर सजा देने के काम की अपेक्षा जुर्म होने के पहले खबरदारी रखने के काम का दुरुपयोग होना अधिक संभव है। अर्थात् शासनकर्म की अपेक्षा निवारणकर्म्म से लोगों की स्वतंत्रता में अधिक दस्तंदाजी हो सकती है। क्योंकि आत्मस्वातंत्र्य के आधार पर किया गया आदमी का कोई भी काम ऐसा नहीं है जिससे यह बात न साबित की जा सके कि उसे औरों की किसी न किसी तरह की हानि जरूर हो सकती है। अर्थात् जिस स्वतंत्रता के पाने का सब को हक है वही स्वतंत्रता जुर्म का कारण साबित की जा सकती है। परन्तु यदि कोई सरकारी नौकर या और ही कोई आदमी किसी को खुले तौर पर कोई जुर्म करने की तैयारी में देखे तो उसका यह धर्म्म नहीं कि जुर्म होने तक वह चुपचाप तमाशा देखता रहे। नहीं, उसको चाहिए कि वह उस आदमी को फौरन रोके और उस जुर्म को न होने दे। दूसरों के प्राण लेने के सिवा और किसी काम के लिए यदि जहर न मोल लिए जाते या न उपयोग में आते तो उनके बनाने और बेचने का प्रतिबन्ध मुनासिब होता। परंतु यह बात नहीं है क्योंकि जहर का उपयोग निर्दोष कामों ही में नहीं किन्तु लाभदायक कामों में भी होता है। अतएव यदि उनका बेचना मना कर दिया जायगा तो बुरे कामों की तरह अच्छे कामों में भी विघ्न आवेगा। अपघात, दुर्घटना या जुर्म होने देने की खबरदारी रखना भी सरकारी अफसरों का काम है। मान लीजिए कि कोई आदमी नीचे से टूटे हुए एक पुल पर से जाना चाहता है वह उसके पास पहुंच गया है और उस पर अपना पैर रखना ही चाहता है उस पर पैर रखने और नीचे गिरने में देर नहीं है। इस दृश्य को किसी सरकारी अफसर या और किसी आदमी ने देखा। पर इतना समय नहीं कि वह पुकार कर उस आदमी को पुल पर पैर रखने से मना करे। ऐसी दशा में उसका काम है कि वह उस आदमी को पकड़ कर पीछे खींच ले। ऐसा करने से उस आदमी की आत्मस्वतंत्रता में जरा भी बाधा नहीं आ सकती। क्योंकि किसी इष्ट या अभिलषित काम के करने ही का नाम स्वतंत्रता है और पुल पर से नदी में गिरना उस आदमी को बिलकुल भी इष्ट नहीं है। परंतु जिस काम में अनिष्ट होने की सिर्फ संभावना रहती है, निश्चय नहीं रहता, उसमें उस अनिष्ट का सामना करना चाहिए या नहीं – इस बात का फैसला सिर्फ वही आदमी कर सकता है जिसका वह काम है। क्योंकि जिस मतलब से वह उस अनिष्ट का सामने करने का विचार करेगा उस मतलब का गौरव या लाघव सिर्फ उसी को अच्छी

तरह मालूम रहेगा। अतएव ऐसे विषय में होने वाले अनिष्ट की उसे सिर्फ सूचना ही दे देना बस है। उस काम को करने के लिए उस पर जबरदस्ती करना मुनासिब नहीं। परंतु यदि इस तरह के काम से किसी अल्पवयस्क या ऐसे आदमी का सम्बंध हो जिसके समझ में, सन्निपात इत्यादि किसी रोग या और ही किसी कारण से फर्क आ गया हो या उत्तेजना अथवा घबराहट के कारण जिसकी विचार-शक्ति बिगड़ गई हो तो बात दूसरी है। इस हालत में उसका जरूर प्रतिबन्ध करना चाहिए। इन नियमों के अनुसार जहर की बिक्री इत्यादि का विचार करने से यह बात ध्यान में आ सकती है कि कब उसे बंद करना उचित होगा और कब अनुचित। अर्थात् किसी हालत में जहर बेचना स्वतंत्रता के सिद्धांतों के अनुकूल होगा और किस हालत में प्रतिकूल। उदाहरण के तौर पर यदि जहर बेचने वाले इस बात के लिए मजबूर किये जायं कि वे जहर की शीशियों पर एक कागज का टुकड़ा चिपकाकर उसपर यह लिखें कि उनमें जहर भरा हुआ है तो यह बात स्वाधीनता में बाधा डालने वाली न होगी। क्योंकि मोल लेने वाला यह कभी न चाहेगा कि वह इस बात को न जाने कि जिस चीज को वह ले रहा है वह जहर है। परंतु यदि यह शर्त कर दी जाय कि जिसे जहर मोल लेना हो वह हमेशा डॉक्टर की सर्टिफिकेट दाखिल किया करे तो अच्छे कामों के लिए भी उसे जहर मिलना कभी-कभी असम्भव हो जायगा, और खर्च तो उसे हमेशा ही अधिक पड़ेगा। जो लोग किसी उपयोगी काम के लिए जहर मोल लेना चाहें उनको उसके लेने में कोई कठिनता न आनी चाहिए। परंतु जो लोग किसी तरह का जुर्म करने के इरादे से उसे लेना चाहते हों उनको वह कठिनता आनी चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार कारखाई होने के लिए सिर्फ एक ही साधन है। इस साधन का नाम बेंथाम (Bentham-Ed.) ने ''पूर्वसिद्ध साक्ष्य'' अर्थात् ''पहले ही से तैयार की गई गवाही'' रक्खा है। यह नाम बहुत उचित है। इसके अनुसार कानून बनाए जाने से जहर मोल लेने वालों की स्वाधीनता में अनुचित रीति पर दस्तंदाजी होने का कम डर रहेगा। प्रतिज्ञापत्रों अर्थात् इकरारनामों के सम्बंध में इस साधन के आधार पर जिस तरह कारखाई की जाती है वह हर आदमी जानता है। जब कोई इकरारनामा लिखा जाता है तब उसपर दस्तखत किये जाते हैं और गवाह इत्यादि भी कर लिए जाते हैं। यह एक मामूली बात है और मुनासिब भी है। ऐसा करने से इकरारनामे की शर्तें बलपूर्वक भी पूरी कराई जा सकती हैं। और, यदि, पीछे से किसी तरह का झगड़ा फसाद पैदा होता है तो इस बात का सबूत मिलता है कि सचमुच ही इस तरह का इकरार किया गया था और उस समय कोई ऐसी बात नहीं थी जिसके कारण वह इकरार कानून के अनुसार रद्द समझा जा सके। इससे झूठे इकरारनामे लिखने वालों का बहुत प्रतिबन्ध होता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि लोग धोखा देकर बेफायदा इकरारनामे लिखा लिया करते हैं। इस तरह के इकरारनामे कानून की दृष्टि से हमेशा रद्द समझे जाते हैं। पर पूर्वोक्त नियम के अनुसार कार्रवाई करने से इस तरह की धोखेबाजी का डर कम रहता है। जिन चीजों को पाकर लोग जुर्म कर सकते हैं उनकी बिक्री के विषय में भी इस तरह के प्रतिबन्ध करने से काम चल सकता है। उदाहरण के लिए इस तरह की चीजें बेचने वाला एक रजिस्टर खोले। उसमें वह बिक्री का ठीक ठीक समय, मोल लेनेवाले का नाम और पता, और बिकी हुई चीज की तौल और किस्म लिख ले। मोल लेने वाले से वह यह भी पूछ ले कि किस काम के लिए वह चीज दरकार है और जो जवाब उसे मिले उसको भी वह अपने रजिस्टर में दर्ज कर ले। यदि किसी डॉक्टर का लिखा हुआ नुस्खा न हो तो बेचने वाला एक आदमी को गवाह भी कर ले। इससे यह लाभ होगा कि यदि पीछे से यह बात प्रकट हो जाय कि बिकी हुई

चीज किसी बुरे काम में लाई गई है अर्थात् उसकी सहायता से कोई जुर्म हुआ हो तो गवाह इस बात को साबित कर देगा कि अमुक आदमी ने उस चीज को मोल लिया था। इस तरह के नियम करने से जो लोग कोई ऐसी चीज किसी उपयोगी काम के लिए मोल लेना चाहेंगे उनको उसके मिलने में विशेष कठिनता न पड़ेगी। परंतु यदि कोई यह चाहेगा कि उस चीज का बुरा उपयोग करके मैं पकड़ा न जाऊं तो उसे अपने बचाव के लिए बहुत बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ेगा।

समाज को इसका हक है, और वह हक स्वाभाविक भी है कि उसके विरुद्ध जितने अपराध - जितने जुर्म - होने वाले हों उनसे बचने के लिए वह पहले ही से प्रबंध करे। इसके साथ ही समाज का यह भी कर्तव्य है कि वह हर आदमी के निजसम्बंधी बुरे बर्ताव या दुराचार के विषय में किसी तरह का प्रतिबन्ध करने, या किसी तरह की सजा देने, की खटपट न करें। क्योंकि ऐसा करना उसको मुनासिब नहीं। पर इस दूसरे सिद्धांत की हद पहले सिद्धांत के ही आधार पर नियत की जा सकती है। अर्थात् अपनी हानि होने से अपने को बचाने का जो हक समाज को है उसी हक के आधार पर दूसरे सिद्धांत की हद का अंदाज किया जा सकता है। एक उदाहरण लीजिए। शराब पीकर उन्मत होना, मामूली तौर पर, कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिए कानूनी प्रतिबन्ध दरकार हो। परंतु उन्मत्त होकर यदि किसी आदमी ने दूसरे आदमी को पहले कभी तकलीफ पहुंचाई हो, और यह बात साबित भी हो चुकी हो, तो मेरी राय में, कानून के अनुसार उसका विशेष प्रतिबन्ध करना बहुत मुनासिब होगा। यदि वह शराब पीकर फिर उन्मत्त हो तो उसे सजा मिलनी चाहिए; और, यदि, उन्मत्तता की हालत में वह दुबारा कोई जुर्म करे तो पहले की अपेक्षा उसे अधिक कड़ी सजा दी जानी चाहिए। उन्मत्त होते ही जो लोग दूसरों को तकलीफ देने पर उतारू हो जाते हैं - अर्थात् उन्माद के कारण दूसरों पर अत्याचार करने की स्फुर्ति जिन लोगों में सहसा जागृत हो उठती है- उनका उन्मत्त होना मानो दूसरों का अपराध करना है। इसी तरह सिर्फ आलसीपन के कारण किसी को सजा देना उस पर जुल्म करना है। यह कोई जुर्म नहीं है जिसके लिए सजा दी जा सके। परन्तु यदि किसी ऐसे आदमी में आलसीपन है जिसे और लोगों का आश्रय हो, अथवा आलसीपन के कारण जो आदमी किसी इकरार को पूरा न कर सकता हो, तो बात दूसरी है। ऐसी हालत में उसे सजा देना जरूर मुनासिब होगा। यदि कोई आदमी आलसीपन या और किसी कारण से, जो निवारण किया जा सकता हो, अपने बाल बच्चों की परवरिश न कर सके; या और कोई काम, जिसे करना उसका कर्तव्य हो, न कर सके; तो, और साधनों के अभाव में, जबरदस्ती मेहनत कराके उससे अपने कर्तव्यों को पूरा कराना अन्याय नहीं। इस तरह की जबरदस्ती की गिनती जुल्म में नहीं हो सकती।

फिर, बहुत से काम ऐसे भी हैं जो सिर्फ करने वाले ही को प्रत्यक्ष हानि पहुंचाते हैं और लोगों को नहीं। इससे ऐसे कामों की रोक कानून से नहीं की जा सकती। परन्तु बुरे कामों को खुले मैदान करना तहजीब के खिलाफ है - उससे सभ्यता भंग होती है। अतएव ऐसे कामों की गिनती दूसरों से सम्बंध रखने वाले अपराधों में हो जाती है। इस हालत में उनका प्रतिबन्ध न्याय-संगत होता है। लोक लज्जा के विरुद्ध जितने अपराध हैं उनकी गिनती इसी तरह के अपराधों में है। इस तरह के अपराधों के विषय में यहां पर अधिक लिखने की जरूरत नहीं। क्योंकि एक तो प्रस्तुत विषय से उनका सम्बंध बहुत दूर का है; फिर लोक लज्जा का दोष और

भी ऐसी बहुत सी बातों पर लग सकता है जो यथार्थ में दूषित नहीं है, अथवा जो दूषित मानी ही नहीं गई हैं।

यहां पर मुझे एक और प्रश्न का ऐसा उत्तर देना है जो मेरे प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुकूल हो - अर्थात् जो उन सिद्धांतों से मेल खाता हो। निज से सम्बंध रखने वाले कुछ काम दूषणीय माने गए हैं। परन्तु हर आदमी को अपने निज के काम काज अपनी इच्छा के अनुसार करने की स्वतंत्रता है। इसी खयाल से समाज ऐसे कामों का प्रतिबन्ध नहीं करता; वह किसी से यह नहीं कहता कि तुम ऐसे काम मत करो; और न वह ऐसे कामों के लिए किसी को सजा ही देता है। क्योंकि इस तरह के कामों से जो हानि होती है वह सिर्फ करने वाले ही को सहन करनी पड़ती है। उसका बोझ खुद उसी के सिर रहता है। अब प्रश्न यह है कि इस तरह के काम करनेवालों को जैसे उनके करने की स्वतंत्रता है, वैसे ही उनको करने के लिए उपदेश या उत्तेजना देने की दूसरों को भी स्वतंत्रता है या नहीं? कुछ काम ऐसे हैं जिनसे सिर्फ करने वालों ही की हानि की संभावना है। उन्हें यदि वे चाहें तो कर सकते हैं। पर यदि दूसरा आदमी किसी से कहे कि - ''तुम इस काम को करो,'' या उसे करने के लिए किसी तरह की वह उत्तेजना दे, तो क्या उसे ऐसा करने की भी स्वतंत्रता है? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं है, क्योंकि यह बात कठिनता से खाली नहीं है। कोई काम करने के लिए दूसरे को उपदेश देना, या उससे प्रार्थना करना, एक ऐसी बात नहीं है जिसकी गिनती निज की बातों में हो सके। वास्तव में ऐसी बातें आत्म-विषयक बर्ताव की परिभाषा के भीतर नहीं आ सकतीं। किसी को उपदेश देना अथवा प्रलोभन या लालच दिखलाना सामाजिक काम है। अतएव लोगों का खयाल है कि दूसरों से सम्बंध रखने वाले और कामों की तरह वह काम भी सामाजिक बंधन का पात्र है। अर्थात् इसका भी बंधन समाज के हाथ में है। परन्तु यह खयाल गलत है। यह भ्रम मात्र है। थोड़ा सा विचार करने से यह भ्रम दूर हो जायगा। कुछ देर सोचने से यह बात समझ में आ जायगी कि उपदेश और उत्तेजन यद्यपि व्यक्ति-स्वातंत्र्य की परिभाषा के ठीक ठीक भीतर नहीं आते, तथापि जिन प्रमाणों के आधार पर व्यक्ति-स्वातंत्र्य की स्थापना है वही प्रमाण उपदेश और उत्तेजन की बातों के भी आधार हैं। जिन प्रमाणों के आधार पर लोगों को इस बात की स्वतंत्रता है कि जिन कामों का और लोगों से सम्बंध नहीं है उनको, उनके हानि लाभ की जिम्मेदारी अपने ऊपर रखकर, जिस तरह वे चाहे कर सकते हैं, उन्हीं प्रमाणों के आधार पर उनको इस बात की भी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि दूसरों से सलाह करके या उनकी राय लेकर वे इस बात का निश्चय करें कि क्या करना उनके लिए अच्छा होगा और क्या न अच्छा होगा। जिस आदमी को जिस काम के करने की आज्ञा है उसे उस काम के सम्बंध में औरों से सलाह लेने की भी आज्ञा होनी चाहिए। यदि कोई काम करना मुनासिब है, तो उस काम के विषय में पूछताछ करना और सलाह लेना भी मुनासिब है। जब सलाह देने वाला अपनी सलाह से खुद फायदा उठाता है; या जब वह उन बातों को जिन्हें समाज और सरकार बुरा समझती है, करने की सलाह देते फिरना, पेट के लिए, अपना पेशा कर लेता है; तब यह विषय जरूर संदेहास्पद हो जाता है। तब यह खयाल पैदा होता है कि ऐसे सलाहकार - ऐसे उपदेशक - को सलाह या उपदेश देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए या नहीं? ऐसी हालत में एक पेचीदा बात पैदा हो जाती है। क्योंकि जिन बातों को समाज बुरा समझता है, उनका पक्ष लेने और अपना पेट पालने के लिए ऐसा करने, की दूसरों को सलाह देने वाले लोगों

का एक वर्ग ही जुदा बन जाता है। अतएव इस बात के निर्णय की जरूरत होती है कि समाज से इस तरह प्रतिकूलता करने वाले वर्ग को बनने देना चाहिए या नहीं। एक उदाहरण लीजिए जुआ खेलना और व्याभिचार करना सहन किया जा सकता है। क्या कुटनापन करने या जुआ खेलने वालों को किराए पर देने के लिए मकान रखने वालों का पेशा भी सहन किया जा सकता है? जिन सिद्धांतों के आधार पर इस बात का निर्णय किया जाता है कि लोगों को किन बातों को करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए उनकी हद है। यह हद जिस जगह एक दूसरी से मिलती है उस जगह जो प्रश्न पैदा होते हैं, उन्हीं में से एक प्रश्न यह भी है। अतएव यह बात सहसा ध्यान में नहीं आती कि यह प्रश्न - यह बात किस सिद्धांत के भीतर है। अर्थात् इसका सम्बंध स्वतंत्रता देने वाले सिद्धांत से है या स्वतंत्रता न देनेवाले से। दोनों सिद्धांतों के अनुकूल दलीलें पेश की जा सकती हैं। स्वतंत्रता देने वाले के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि जिस काम को मामूली तौर पर करने की मनाई नहीं है उसे यदि कोई पेशे के तौर पर करने लगा, और उसकी मदद से वह अपना पेट पालने या फायदा उठाने लगा, तो क्या इतने से ही वह अपराधी हो गया? या तो आप उसको इस काम के करने की पूरी पूरी स्वतंत्रता ही दीजिए या उसको इसे करने से बिल्कुल रोक ही दीजिए। स्वतंत्रता-सम्बंधी जिन सिद्धांतों की सिद्धि के लिए इतना वादविवाद हुआ वे यदि ठीक हैं तो, समाज के रूप में, समाज को यह अधिकार नहीं कि वह व्यक्तिविषयक किसी बात को कानून के विरुद्ध कह सके। इसलिए वह समझाने बुझाने या सलाह देने से आगे नहीं जा सकता। इस विषय में यदि समाज कुछ कर सकता है तो सिर्फ इतना ही कर सकता है। अतएव हर आदमी को अधिकार है कि चाहे वह दूसरे को कोई काम करने की सहायता दे, चाहे न करने की। समाज उसे नहीं रोक सकता। यह दलील स्वतंत्रता देने के पक्ष में हुई। पर जो लोग स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं हैं वे और ही तरह की दलील पेश करेंगे। वह कहेंगे कि यद्यपि यह सच है कि, जिन बातों से अकेले एक ही आदमी के हित या अहित से सम्बन्ध है उनको रोकने, या सजा देने के इरादे से सत्ता के जोर पर, बुरा या भला ठहराने, का अधिकार समाज को नहीं है; तथापि समाज या सरकार को यदि कोई बात बुरी जान पड़े तो उसे इतना अधिकार जरूर है कि वह उसके बुरे या भले होने के प्रश्न को विवादास्पद समझे रहे। यदि यह मान लिया जाय तो जो लोग निरपेक्ष और पक्षपातहीन होकर नहीं, किन्तु अपने फायदे के लिए - अपने पेट भरने के लिए - दूसरों को, सरकार की समझ के प्रतिकूल, उपदेश देते हैं उनके उपदेश के असर से लोगों को बचाने के लिए यदि समाज और सरकार कोशिश करे तो वह कोशिश अनुचित नहीं कही जा सकती। जो लोग अपने फायदे के लिए दूसरों को उपदेश देते हैं उनको वैसा करने से यथासम्भव रोकना, और सब लोगों को जो मार्ग - अच्छा या बुरा - पंसद हो उसीसे उसे चलने देना मुनासिब हैं। ऐसा करने से किसी की कुछ हानि नहीं। एक उदाहरण लिजिए। खेल से सम्बन्ध रखने वाला कानून यद्यपि ऐसा है कि उसके अनुसार इस बात का निश्चय ठीक ठीक नहीं हो सकता कि कौन खेल जा और कौन बेजा है; औ यदपि हर आदमी अपने घर में, या परस्पर एक दूसरे के घरों में, किसी ऐसी जगह जो चन्दे से खोली गई हो और जहां सिर्फ चन्दा देनेवाली मित्र-मंडली इकठ्ठी होती हो, जुआ तक खेल सकती है; तथापि सर्वसाधारण के लिए जुआ खेलने के अड्डे खोलने की मनाई करना अनुचित नहीं। यह जरूर सच है कि इस तरह मनाई से पूरी पूरी कामयाबी कभी नहीं हो सकती। क्योंकि पुलिस को चाहे जितना अधिकार दिया जाए और वह चाहे जितनी सख्ती करे, तथापि, किसी न किसी बहाने, जुआ खेलने के अड्डे हमेशा खोले ही जाते हैं। परन्तु इस

तरह के जुआ-घर छिपी हुई जगहों में होते है और जो लोग उनको खेलते हैं वे इस बात की खबरदारी रखते हैं कि उनका पता कहीं सरकारी अफसरों को ना लग जाय। इसलिए जो लोग पक्के जुआरी नहीं हैं और ऐसे अड्डों की तलाश में नहीं रहते उनको छोड़ कर और आदमियों को उनका पता नहीं चलता। खुले मैदान जुआ खेलना मना करने से और लोग इस बुरी आदत से बचते हैं। समाज को इतना ही फायदा काफी समझना चाहिए। इससे आगे जाने का उसे अधिकार भी नहीं। यह दूसरे पक्षवालों की दलील हुई। यह दलील बहुत मजबूत है - खूब सबल है। परन्तु यह कहने का साहस मैं नहीं कर सकता कि इस दलील के आधार पर मुख्य अपराधी को छोड़ देना और अपराध करने की उत्तेजना देनेवाले को सजा देना मुनासिब होगा। इसे स्वीकार करने में अन्याय होता हैं- बात नीतिविरूद्ध हो जाती है। इस दलील के अनुसार काररवाई करने से कुटनापन करने वाले को सजा होगी, पर व्यभिचार करने वाला साफ छूट जायगा। इसी तरह जुआ-घर खोलने वाला पकड़ा जायगा, पर जुआ खेलने वाला बच जायगा। इसी से इस विषय को अभी विवादास्पद रहने देना ही अच्छा होगा। इस दलील के आधार पर क्रय-विक्रय के मामूली व्यापार में दस्तंदाजी करना- अर्थात् किसी चीज के बेचने या मोल लेने की मनाही कर देना- और भी अनुचित बात होगी। जितनी चीजें बाजार में बिकती हैं उनको बहुत अधिक खा जाने से नुकसान होने का डर रहता है। परन्तु बेचनेवाला हमेशा यही चाहता है कि उसकी बिक्री बढ़े और लोग उन चीजों को खूब खायं। अर्थात् वह बिकी हुई चीजों के दुरूपयोग को उत्तेजित करता है। पर इस आधार पर शराब की बिक्री बंद कर देना कभी उचित नहीं हो सक्ता। क्योंकि अधिक शराब पीकर उसका दुरुपयोग करने वालों को उत्तेजन देने में यद्यपि दुकानदारों का फायदा है, तथापि जो लोग शराब का सदुपयोग करते हैं, अर्थात् उसे अच्छे काम में लगाते हैं, उनके लिए इन दुकानदारों की जरूरत भी है। परन्तु दुरुपयोग करने वालों को जो ये लोग उत्तेजना देते हैं उससे समाज की हानि जरूर होती है। यह हानि समाज के लिए बहुत ही अनिष्टकारक है। इससे ऐसे दुरुपयोग को बंद करने के लिए दुकानदारों से जमानत लेना या इकरारनामा लिखाना बहुत मुनासिब है। इस तरह के बंधन से दुकानदारों की स्वतंत्रता में दस्तंदाजी नहीं होती। पर, हां, यदि इस तरह के बंधन से समाज का कोई फायदा न होता तो उसकी गिनती दस्तंदाजी में जरूर होती।

यहां पर एक और प्रश्न उठता है। वह यह है कि जो काम कर्ता के लिए हानिकारक है उसे ही यदि वह चाहे, और उससे किसी दूसरे का सम्बंध न हो तो उसे उस काम को करने देना मुनासिब जरूर है। पर ऐसे काम को अप्रत्यक्ष रीति से प्रतिबन्ध करना गवर्नमेंट के लिए उचित है या नहीं? उदाहरण के लिए, शराब पीकर मतवाले होने के साधनों को कम करने या शराब बेचने की दुकानों की संख्या कम करके शराबियों के लिए उसका मिलना कुछ कठिन कर देने, के उपायों की योजना करना गवर्नमेंट को उचित है या नहीं? और अनेक व्यावहारिक प्रश्नों की तरह इस प्रश्न के भी बहुत से भेद किये जाने की जरूरत है। नशे की चीजों पर इस मतलब से अधिक कर, अर्थात् टेक्स लगा देना कि उनके मिलने में लोगों को कठिनता पड़े एक ऐसी बात है जो ऐसी चीजों की बिक्री को बिल्कुल ही बंद कर देने से थोड़ी ही भिन्न है। इन दोनों बातो में बहुत कम फरक है। अतएव, यदि ऐसी चीजों की बिक्री बिल्कुल ही बंद कर देना उचित माना जायगा तो कर लगाना भी उचित माना जायगा अन्यथा नहीं। जिस चीज की कीमत जितनी अधिक बढ़ा दी जायगी उतनी ही अधिक

मानो उन लोगों के लिए वह मनाई का काम देगी जो उसे उतनी कीमत देकर, लेने का सामर्थ्य नहीं रखते। परन्तु जो उसे उतनी कीमत देकर भी लेने का सामर्थ्य रखते हैं उनको अपनी इच्छा तृप्त करने के लिए मानो उतना दंड अर्थात् जुर्माना देना पड़ेगा। समाज और व्यक्ति से सम्बंध रखने वाले कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जिनका पालन करना कानून और नीति के अनुसार हर आदमी का धर्म्म है। इन कर्तव्यों को पूरा करने के बाद हर आदमी को इस बात का हक है कि वह अपनी बची हुई आमदनी को अपने आराम के लिए वह जिस तरह और चाहे जिस काम में खर्च करे। इन दलीलों को सुनकर बिना अच्छी तरह विचार किये शायद कोई यह कहे कि आमदनी बढ़ाने के लिए नशे की चीजों पर अधिक कर लगाना अनुचित है। पर यह बात याद रखना चाहिए कि सरकारी आमदनी बढ़ाने की जरूरत होने पर बिना कर बढ़ाये काम ही नहीं चल सकता। आमदनी बढ़ाने का एकमात्र यही उपाय है। बहुत से देशों में जो कर लगाया जाता है उसके अधिक भाग को, अप्रत्यक्ष रीति से, वसूल करने की जरूरत पड़ती है। अतएव खाने पीने की भी कुछ चीजों पर गवर्नमेंट को लाचार होकर कर लगाना पड़ता है। इस कारण ऐसी चीजों के उपयोग की थोड़ी बहुत प्रतिबंधवत्ता जरूर हो जाती है। अर्थात् कीमत बढ़ जाने से कुछ आदमी ऐसी चीजें मोल नहीं ले सकते। यह उनके लिए मनाई के ही बराबर है। इस कारण गवर्नमेंट का यह धर्म है कि कर लगाने के पहले वह इस बात का अच्छी तरह विचार कर ले कि किन चीजों के बिना लोगों का काम चल सकता है और किनके बिना नहीं चल सकता। जिन चीजों का एक नियमित मात्रा से अधिक उपयोग करने से लोगों की हानि होने का निःसंदेह डर हो उनपर अधिक कर लगाना गवर्नमेंट का कर्तव्य है। अतएव नशे की चीजों पर कर लगाकर यदि गवर्नमेंट को अपनी आमदनी बढ़ाने की जरूरत हो तो जितने कर से गवर्नमेंट का काम होता हो उतना कर लगाना उचित ही नही, किन्तु प्रशंसनीय भी है।

यहां पर एक और बात का विचार करना है। वह यह कि नशे की चीजों को न्यूनाधिक परिमाण में बेचने का पूरा पूरा हक कुछ ही आदमियों को देना चाहिए या नहीं। इसका जवाब उस काम के अनुसार होगा जिसके खयाल से बेचने का प्रतिबन्ध किया गया होगा। अर्थात् जैसा काम होगा, वैसा ही जवाब भी होगा। जहां सब लोग की आमद रफ्त रहती है - अर्थात् जो सार्वजनिक जगहें हैं - वहां पुलिस रखने की जरूरत होती है। पर जहां मादक पदार्थ, अर्थात् नशे की चीजें, बिकती हैं वहां तो पुलिस की और भी अधिक जरूरत होती है; क्योंकि समाज के विरुद्ध जो अपराध होते हैं उनका बीज बहुत करके ऐसी ही जगहों में बोया जाता है - वहीं ऐसे अपराधों की अधिक उत्पत्ति होती है। अतएव नशे की चीजों के बेचने का अधिकार सिर्फ उन्हीं लोगों को चाहिए जो सभ्य और अच्छे चाल चलन के हैं और जो अपनी भलमंसी की जमानत दे सकते हैं। यदि बिकने की जगह पर ही लोग ऐसी चीजें खर्च करते हों तो इस बात का खयाल रखना और भी जरूरी बात है। दुकान खोलने और बंद करने का ऐसा समय नियत कर देना मुनासिब होगा जिसमें निगरानी रखने वाले अफसर, या पुलिस के अधिकारी, अच्छी तरह देख भाल कर सकें। दुकानदार के अयोग्य होने, या जानबूझकर उसके आंख छिपाने, से यदि बार बार झगड़े फसाद हों, या जुर्म करने के इरादे से वहां लोग इकट्ठे हों, तो नशे की चीजों के बेचने का लाइसंस छीनकर दुकान बंद कर देना चाहिए। इससे अधिक और कोई प्रतिबन्ध करना, मेरी समझ में तत्वदृष्टि से अन्याय होगा। एक उदाहरण लीजिए। शराब पीने के लालच को घटाने,

और शराब की दुकानों तक पहुंचने में बाधा डालने, के इरादे से यदि दुकानों की संख्या कम कर दी जाय तो जो लोग शराब का दुरुपयोग करते हैं उनके कारण सब लोगों को तकलीफ उठाना पड़े। अर्थात् ऐसा करने से कुछ आदमियों के कारण सबको शराब लेने में असुभीता हो और गेंहू के साथ घुन के भी पिस जाने की मसल पूरी हो जाय। इस तरह का प्रतिबन्ध सिर्फ उस समाज के लिए उपयोगी और उचित हो सकता है जिसमें कामकाजी लोग लड़कों या असभ्य जंगली आदमियों की तरह अशिक्षित होते हैं; अतएव जिन्हें भविष्यत में स्वाधीनता पाने के योग्य बनाने के लिए, हर बात में, नियमबद्ध करने की जरूरत रहती है। परन्तु किसी भी स्वाधीन देश में मेहनत मजदूरी करने वालों के साथ इस नियम के अनुसार खुले तौर पर बर्ताव नहीं किया जा सकता। और कोई आदमी, जिसे स्वाधीनता की सच्ची कीमत मालूम है, उनके साथ इस नियम के अनुसार बर्ताव किये जाने की राय भी न देगा। परन्तु यदि उनको स्वाधीनता की शिक्षा देने, और स्वाधीन आदमियों की तरह उनके साथ बर्ताव करने, के और सब साधनों की योजना निष्फल हुई हो और यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई हो कि उनके साथ वही बर्ताव मुनासिब है जो लड़कों के साथ किया जाता है, तो बात ही दूसरी है। इस हालत में पूर्वोक्त नियम के अनुसार बर्ताव किया जा सकता है। जिस बात के विचार की जरूरत है उसके विषय में सिर्फ यह कह देना कि इसमें पूर्वोक्त नियम के अनुसार कारवाई होनी चाहिए सर्वथा असंगत है। क्योंकि कहने मात्र से यह नहीं साबित होता कि और सब साधनों के अनुसार बर्ताव करने की कोशिश निष्फल हुई है। नहीं, उसकी निष्फलता को सप्रमाण साबित करना चाहिए। आदमी अकसर यह कहते हैं कि हम लोगों में यही चाल है, अथवा हम लोगों के यहां ऐसा ही व्यवहार होता आया है। पर यह कहना कोई कहना है? इसमें कोई अर्थ नहीं। यह प्रलाप मात्र है। इस देश में जितनी सभाएं, संस्थाएं या समाज हैं वे सब असम्बद्ध बातों का समूह हैं। अतएव जो बातें प्रतिबंधहीन और परम्पराप्राप्त राज्यों में ही देख पड़नी चाहिए वे हम लोगों के आचार और व्यवहार में घुस गई हैं। और मुशकिल यह है कि यहां कि सभाएं सब स्वाधीन हैं। इसलिए प्रतिबन्ध की बातों से नैतिक शिक्षा - संबंधी लाभ भी, जैसा चाहिए नहीं होता। क्योंकि काफी तौर पर ऐसी बातों का प्रतिबन्ध ही नहीं किया जा सकता।

इस पुस्तक में, पहले कहीं पर, यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि जिन बातों का सम्बंध और लोगों से नहीं है उनके विषय में हर आदमी स्वतंत्र है। वह उन बातों को जिस तरह चाहे कर सकता है। इसी नियम के अनुसार यदि कुछ आदमी मिलकर एक समाज की स्थापना करें, और जिन बातों से उस समाज के मेम्बरों को छोड़कर और किसी का सम्बंध नहीं है उनको यदि वे, एक दूसरे की अनुमति से करना चाहें तो कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए वे सर्वथा स्वतंत्र हैं। ऐसे समाज के मेम्बरों की राय में जब तक कोई फेरफार नहीं होता तब तक इस विषय में कोई बाधा नहीं आती - अर्थात् तब तक उनकी स्वतंत्रता बनी रहती है। परन्तु राय एक ऐसी चीज है कि वह हमेशा कायम नहीं रहती; वह बदला करती है। अतएव जिन बातों से सिर्फ किसी समाज-विशेष ही का सम्बंध है उनके विषय में भी समाज के सब आदमियों को परस्पर एक दूसरे से इकरार कर लेना चाहिए। इस तरह का इकरार हो जाने पर उनसे उसे पूरा कराना मुनासिब है। पीछे से चाहे उसे पूरा करने की उनकी इच्छा न हो, तो भी, नियम यही है कि वे उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध भी पूरा करें। उस समय उनकी इच्छा की परवा करना न्यायसंगत नहीं। परन्तु जितने देश हैं प्रायः सब की कानूनी

किताबों में इस नियम के अपवाद पाए जाते हैं। अर्थात् बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनके विषय में इस नियम से काम नहीं लिया जाता। जिस इकरार- जिस प्रतिज्ञा - से किसी तीसरे आदमी के नुकसान होने का डर होता है सिर्फ उसे ही न पूरा करने की जिम्मेदारी से वे नही बरी कर दिये जाते; किन्तु जिस प्रतिज्ञा से परस्पर दो आदमियों में से एक का भी नुकसान होने का डर होता है उसकी जिम्मेदारी से भी वे कभी कभी बरी कर दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ इंगलैंड, और प्रायः दूसरे सभ्य देशों में भी, यदि कोई आदमी कोई गुलाम बनाए जाने के लिए बिकने या बेचे जाने के लिए इकरार करे, तो उसका वह इकरार व्यर्थ होगा। ऐसा इकरार न तो कानून ही के बल पर पूरा किया जा सकेगा और न लोकसम्मति ही के बल पर। अपनी इच्छा के अनुसार लोगों के ऐहिक जीवन की यथेच्छ व्यवस्था करने के हक में इस तरह बाधा डालने का कारण स्पष्ट है। निज की स्वाधीनता से सम्बंध रखने वाले इस चरम सीमा के उदाहरण में प्रतिबन्ध करने का कारण तो और भी अधिक स्पष्ट है। जिस बात से दूसरों का सम्बंध नहीं है उसके विषय में किसी की स्वतंत्रता में दस्तंदाजी न करने का मुख्य कारण सिर्फ स्वतंत्रता-सम्बंधी प्रेम है। जब कोई आदमी खुशी से कोई स्थिति विशेष पसंद कर लेता है तब उससे यह सूचित होता है कि उसे वह स्थित इष्ट या लाभदायक जरूर मालूम हुई होगी; अथवा, यदि यह नहीं तो कम से कम वह सह्य, अर्थात् सहन करने के लायक, तो जरूर ही जान पड़ी होगी। अतएव, सब बातों का विचार करके, उसे उस काम को करने, अथवा उस स्थिति में रहने देने, से ही उसका हित होगा। परन्तु जो आदमी गुलाम बनने के लिए अपने को बेचता है वह उसके साथ ही अपनी स्वतंत्रता को भी बेच देता है। अतएव अपने निज के सब कामों को स्वतंत्रता-पूर्वक करने का उसे जो हक है उससे वह हाथ धो बैठता है। इसलिए जिस उद्देश से उसे अपनी मनमानी व्यवस्था करने देना न्याय्य समझा जाता है वह उद्देश ही उसके इस अकेले एक काम से निष्फल हो जाता है। उस समय से उनकी स्वतंत्रता जड़ से जाती रहती है, और वह एक ऐसी स्थिति में पहुंच जाता है कि खुशी से और किसी स्थिति में रहने से जो बातें वह अपने अनुकूल कर सकता वे उस स्थिति में नहीं की जा सकतीं। स्वतंत्रता का यह उद्देश नहीं है कि उसे पाकर खुद उसे ही कोई खो बैठे। स्वतंत्रता को बेच देना स्वतंत्रता नही कहलाती। यह कारण-परम्परा बहुत व्यापक है; ये दलीलें दूर तक काम दे सकती हैं। गुलामी से सम्बंध रखने वाला जो उदाहरण मैंने यहां दिया उससे इन दलीलों की गुरुता साफ जाहिर है। परन्तु संसार में रहकर बहुत दफे अपनी स्वतंत्रता को कम कर देने की जरूरत पड़ती है। अर्थात् अकसर ऐसे मौके आते हैं जब आदमी को अपनी स्वाधीनता का प्रतिबन्ध करना पड़ता है। तथापि स्वतंत्रता को बिल्कुल ही बेच देने और उसका प्रतिबन्ध करने में बहुत फरक है। परन्तु जिन बातों से सिर्फ कर्ता का ही सम्बंध है उनका स्वतंत्रता पूर्वक अपनी इच्छा के अनुसार उसे करने देना जिस सिद्धांत का उद्देश है, उसी का यह उद्देश भी है कि जिन बातों का किसी तीसरे से सम्बंध नही है उनके विषय में, यदि लोग परस्पर एक दूसरे से किसी तरह का इकरार कर लें तो उस इकरार से छूटने के लिए भी उनको स्वतंत्रता होनी चाहिए। जिस इकरार से रुपये पैसे का सम्बंध है उसको छोड़कर और कोई प्रतिज्ञा ऐसी नहीं है जिसके विषय में यह कहा जा सके, कि परस्पर एक दूसरे की सम्मति के बिना, दो आदमियों में से जिसकी इच्छा हो वह उस प्रतिज्ञा से अपने को मुक्त न करे। बैरन हम्बोल्ट, जिसकी परमोत्तम पुस्तक से मैंने पहले, कहीं पर, एक जगह, एक अवतरण दिया है, कहता है कि जो प्रतिज्ञाएं शारीरिक सम्बंध या शारीरिक मेहनत के विषय में की जाती हैं उनको एक नियत समय तक ही के लिए करना

चाहिए। यह नहीं कि वे सदा सर्वदा के लिए की जाएं यदि ऐसी प्रतिज्ञाओं को कोई हमेशा के लिए करे भी तो कानून की दृष्टि से वे नाजायज समझी जाय। ऐसी प्रतिज्ञाओं में से विवाह-बंधन की प्रतिज्ञा सबसे अधिक महत्व की है। यह एक ऐसी प्रतिज्ञा है कि प्रतिज्ञा करने वाला दोनों मनुष्यों अर्थात् स्त्री-पुरुषों, का मन यदि अच्छी तरह न मिला तो यह व्यर्थ जाती है। इस बंधनरूपी प्रतिज्ञा के विषय में यह बहुत बड़ी विशेषता है अतएव यदि दोनों में से एक का भी मन न मिला, और स्त्री अथवा पुरुष ने विवाह- बंधन से मुक्त होने की इच्छा जाहिर की, तो उसे वैसा करने देना चाहिए। इस बंधन से छूटने के लिए किसी तरह की बाधा डालना मुनासिब नहीं। यह विषय बहुत बड़े महत्व और झगड़े का है। इससे इस निबंध के बीच में इसका विवेचन विस्तार-पूर्वक नहीं किया जा सकता, अतएव दृष्टांत के तौर पर इसकी जितनी जरूरत थी उतनी ही का उल्लेख करना मैं यहां पर बस समझता हूं। यह विवेचन बहुत ही संक्षिप्त और सिद्धांतरूप है। इसी से प्रमाण देने के बखेड़े में न पड़कर हम्बोल्ट साहब ने सिर्फ निर्णय रूपी सिद्धांत देकर इस विषय को समाप्त कर दिया है। यदि विवाह-बंधनविषयक यह विवेचन सिद्धांत के रूप में न होता तो इस बात को वह जरूर कबूल कर लेता कि इतने थोड़े में और इतने सीधे सादे तौर पर इसका निर्णय नहीं हो सकता। जब कोई आदमी साफ साफ प्रतिज्ञा करके, अथवा किसी विशेष प्रकार का व्यवहार करके, दूसरे के मन में यह विश्वास पैदा कर देता है कि मैं अमुक तरह का बर्ताव तुम्हारे साथ करुंगा; अतएव जब इस प्रतिज्ञा के भरोसे उस दूसरे आदमी के मन में नई नई उम्मीदें पैदा हो जाती हैं, नई नई अटकलें वह लगाने लगता है और अपने जीवन के कुछ हिस्से को वह एक नये सांचे में ढालने लगता है, तब नीति की दृष्टि से पहले आदमी के सिर पर दूसरे आदमी के सम्बंध में एक नई तरह की जिम्मेदारी आ जाती है। यह जिम्मेदारी, कारण उपस्थित होने पर, रद की जा सकती है - मेट दी जा सकती है; पर यह नहीं कि जब जिसके दिल में आवे उसे मेट दे। उसपर विचार जरूर करना होगा। विचार में सबल कारण उपस्थित होने पर वह रद की जा सकती है। इसके सिवा, दो आदमियों में आपस की प्रतिज्ञा से उत्पन्न हुए सम्बंध का यदि तीसरे आदमियों पर कुछ असर हुआ; अथवा, यदि, उसके कारण, तीसरे आदमियों की स्थित में कुछ फेर फेर हो गया; अथवा, यदि, जैसे विवाह में होता है, तीसरे आदमी (संतान) नये पैदा हो गए तो उन तीसरे आदमियों से सम्बंध रखने वाली कर्तव्यरूपी एक नई जिम्मेदारी भी उन दोनों आदमियों पर आ जाती है। अतएव दो आदमी परस्पर जो प्रतिज्ञा करते हैं उस प्रतिज्ञा के तोड़ने या पूरा करने ही पर इस नई जिम्मेदारी का निर्वाह, या निर्वाह करने का तरीका, बहुत कुछ अवलम्बित रहता है। यहां पर तीसरे आदमियों से मतलब, परस्पर प्रतिज्ञा करने वाले दो आदमियों को छोड़कर, और आदमियों से है। इस पारस्परिक प्रतिज्ञा या इकरार के विषय में जो कुछ मैंने लिखा उसका यह अर्थ नहीं, और मैं इस अर्थ को कुबूल भी नहीं करता, कि इस नई जिम्मेदारी के खयाल से प्रतिज्ञा करने वालों को अपनी प्रतिज्ञा का पालन, चाहे कितना ही नुकसान क्यों न हो, करना ही चाहिए। मेरा मतलब सिर्फ इतना ही है कि इन बातों का विचार करना चाहिए। अर्थात् इस तरह की प्रतिज्ञा के सम्बंध में तीसरे आदमियों के हिताहित पर ध्यान देना बहुत जरूरी बात है। हम्बोल्ट के कहने के अनुसार यदि यह बात मान भी ली जाय कि कानून की रू से की हुई प्रतिज्ञा के तोड़ने के हक में किसी तरह का फरक डालना मुनासिब नही, तो भी प्रतिज्ञा करने वालों के नैतिक हक में जरूर ही फरक पड़ जाता है। जिस इकरार- जिस प्रतिज्ञा - का तीसरे आदमियों के हिताहित से बहुत घना सम्बंध हो उसे करने के पहले दोनों आदमियों को चाहिए

कि वे इन सब बातों का अच्छी तरह विचार कर लें। पर, यदि, इस तरह का विचार कोई न करे, और उसकी इस भूल के कारण तीसरे को कुछ हानि पहुंचे, तो हानि की नैतिक जिम्मेदारी उसके सिर पर है। स्वतंत्रता के व्यापक सिद्धांतों को उदाहरण द्वारा खूब स्पष्ट करने के इरादे से ही मैंने इतना विवेचन किया। अन्यथा इस विषय में इतना लिखने की कोई जरूरत न थी। क्योंकि विवाह-बंधन के सम्बंध में विशेष वाद-विवाद करने से यह सूचित होता है कि विवाह की प्रतिज्ञा से बद्ध होने वाले तरुण स्त्री-पुरुषों के हिताहित की परवा कोई चीज नहीं; उनके भावी बाल-बच्चों के हिताहित की ही परवा सबकुछ है।

मैं पहले ही कह चुका हूं कि सर्व-सम्मत और व्यापक सिद्धांतों के न होने से जिन बातों की स्वतंत्रता न देना चाहिए उनकी स्वतंत्रता तो अकसर दी जाती है और जिनकी देना चाहिए उनकी नहीं दी जाती। अरवाचीन योरप में एक बात ऐसी है जिसके विषय में लोगों के स्वतंत्रता-सम्बंधी मनोविकार बहुत ही प्रबल हैं; परन्तु उस बात की स्वतंत्रता देना, मेरी समझ में, अनुचित है। जिन बातों से औरों का सम्बंध नहीं उनको यथेच्छ करने की हर आदमी को स्वतंत्रता है; परन्तु यदि कोई आदमी दूसरे के काम-काज को, अपना ही समझने के बहाने, उसे करना चाहे तो उसका प्रतिबन्ध जरूर करना चाहिए। इस विषय में उसे मनमानी बात करने की स्वतंत्रता देना मुनासिब नहीं। निज से ही विशेष सम्बंध रखने वाले काम-काज के सम्बंध में हर आदमी को स्वतंत्रता देना जैसे गवर्नमेंट का कर्तव्य है, वैसे ही उसका यह भी कर्तव्य है कि जिसको उसने दूसरों पर हुकूमत करने का अधिकार दिया है उसपर वह अच्छी तरह निगाह रक्खे। अर्थात् वह इस बात को देखती रहे कि उसके अधिकारी अपने अधिकार का दुरुपयोग तो नहीं करते। परन्तु कुटुम्ब के आदमियों का परस्पर एक दूसरे से जो सम्बंध होता है उसके विषय में गवर्नमेंट अपने इस कर्तव्य का बहुत अनादर करती है। संसार में जितनी महत्व की बातें हैं वे सब मिलकर भी इस कुटुम्ब-सम्बंधी बात की बराबरी नहीं कर सकतीं। इसका प्रभाव हर आदमी की सुख-सामग्री पर पड़ता है। पत्नी पर पति प्रायः बादशाह की तरह हुकूमत करता है। पर इस विषय में, यहां पर, विस्तार-पूर्वक लिखने की जरूरत नहीं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि स्त्रियों को वे ही हक मिलने चाहिए जो पुरुषों को मिले हैं, और कानून जैसे औरों की रक्षा करता है, वैसे ही उसे स्त्रियों की भी रक्षा करना चाहिए। बस इससे अधिक और कुछ न चाहिए। इतने से ही स्त्रियों के सम्बंध की बुराइयां रफा हो जायंगी। इस विषय में अधिक न लिखने का दूसरा कारण यह है कि स्त्रियों पर चिरकाल से होनेवाले अन्याय के जो पृष्ठपोषक हैं वे इस बात ही को नहीं कुबूल करते कि स्त्रियों को भी स्वतंत्रता देनी चाहिए। वे खुले मैदान कहते हैं कि स्त्रियों पर पुरुषों की सत्ता होने ही में समाज का कल्याण है। अतएव विवाद किस बात पर किया जाय? सच पूछिये तो संतान के सम्बंध में मां-बाप को जो स्वतंत्रता होनी चाहिए उसकी ठीक ठीक कल्पना ही लोगों को नहीं है; और यदि है भी तो वह कल्पना यथा स्थान नहीं है। अर्थात् उस स्वतंत्रता का जैसा प्रयोग होना चाहिए वैसा नहीं होता। यही कारण है जो संतान-विषयक अपने कर्तव्य को पालन करने में गवर्नमेंट को अनेक विघ्न और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। लोगों को इस बात का इतना अधिक पक्षपात है - उनको इस बात की इतनी अधिक हठ है - कि उनकी राय में संतति पर मां-बाप की पूरी और अनन्य-साधारण सत्ता है। वे कहते हैं कि इस सत्ता में जरा भी दस्तंदाजी करने का किसी को अधिकार नहीं। इन बातों को सुनकर यह खयाल होता है कि ''आत्मा वै जायते पुत्रः'' - अर्थात्

पिता की आत्मा का ही दूसरा रूप पुत्र है - यह उक्ति अलंकारिक नहीं, किंतु अक्षरशः सच है। खुद बाप की स्वतंत्रता में चाहे जितनी दस्तंदाजी हो, इसकी लोग कम परवा करेंगे। पर बेटे के सम्बंध में बाप को लोगों ने जो स्वतंत्रता दी है उसमें जरा भी दस्तंदाजी होते देख लोग आपे से बाहर हो जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि स्वतंत्रता की अपेक्षा लोग सत्ता की कीमत अधिक समझते हैं। उदाहरण के लिए संतान की शिक्षा की बात पर विचार कीजिये। क्या यह एक स्वयंसिद्ध बात नहीं है कि जितने मनुष्य जन्म लें उनको एक नियत समय तक शिक्षा देने के लिए सब लोगों को बाध्य करना गवर्नमेंट का काम है? परन्तु क्या एक भी ऐसा आदमी है जिसे इस सिद्धांत को कुबूल करने और निडर होकर प्रसिद्धिपूर्वक जाहिर करने में संकोच न होता हो। शायद ही कोई इस बात को न कुबूल करेगा कि किसी प्राणी को पैदा करके उसे संसार में अपने, और दूसरों से सम्बंध रखने वाले, व्यवहारों को अच्छी तरह करने के योग्य बनाने के लिए उचित शिक्षा देना मां-बाप का (अथवा आज कल की रुढ़ि और कानून के अनुसार बाप का) सबसे बड़ा कर्तव्य है। इस बात को यद्यपि सब लोग कुबूल करते हैं; यद्यपि वे इस बात को निःसंदेह मानते हैं कि इतनी शिक्षा देना बाप का परम कर्तव्य है; तथापि इस देश में ढूंढ़ने से शायद ही कोई आदमी ऐसा मिले जो इस बात को शांत चित्त होकर सुन ले कि इस कर्तव्य को पूरा कराने के लिए बाप को लाचार करना चाहिए - अर्थात् यदि वह खुशी से इसे पूरा न करे तो उसपर बलप्रयोग किया जाय। अपनी संतति को शिक्षा देने के लिए मेहनत करने या किसी तरह का नुकसान उठाने की तो बात ही नहीं, उलटा बिना कौड़ी पैसा खर्च किये भी शिक्षा का प्रबंध कर देने पर, यह बात बाप की मरजी पर छोड़ दी गई है कि उसका जी चाहे तो वह अपने लड़के लड़कियों को शिक्षा दिलावे और न जी चाहे तो न दिलावे। इस बात को लोग अब तक कुबूल नहीं करते कि लड़कों को जीता रखने के लिए भोजन-वस्त्र इत्यादि की ही नहीं, किन्तु उनको पढ़ाने और मानसिक शिक्षा देने की भी काफी शक्ति यदि बाप में न हो तो लड़के पैदा करना मानो उन अभागी लड़कों के, और समाज के भी, विरुद्ध बहुत बड़ा नैतिक अपराध करना है; और यदि बाप अपने इस कर्तव्य को न पूरा करे तो, जहां तक हो सके, उसी के खर्च से लड़कों की शिक्षा का प्रबंध बलपूर्वक कराना गवर्नमेंट का कर्तव्य है।

यदि यह सिद्धांत एक बार कुबूल कर लिया जाय कि बलपूर्वक सार्वजनिक शिक्षा दिलाना गवर्नमेंट का काम है तो, कैसी और किस तरह शिक्षा देनी चाहिए इत्यादि बखेड़े की बातें और कठिनाइयां हमेशा के लिए दूर हो जायं। इन्हीं झंझटों और कठिनाइयों के कारण आजकल जुदा जुदा पंथों और संप्रदायों में झगड़े हो रहे हैं। इस सिद्धांत के अनुसार काम शुरू करने से ये झगड़े भी दूर हो जायंगे और जो श्रम और समय खुद शिक्षा के काम में लगना चाहिए वह शिक्षा विषयक वाद-विवाद में व्यर्थ भी न जायगा। यदि गवर्नमेंट यह कानून जारी कर दे कि प्रत्येक बच्चे को अच्छी शिक्षा मिलनी ही चाहिए तो इस काम में उसे जो मेहनत पड़ती है वह बच जाय। इस बात को गवर्नमेंट मां-बाप पर छोड़ दे कि जहां और जिस तरह से उनको सुभीता हो अपने बच्चों की शिक्षा का वे प्रबंध करें। फीस देकर गवर्नमेंट सिर्फ गरीब आदमियों के लड़कों की मदत करे और जिनका कोई वारिस न हो उनकी शिक्षा में जो खर्च पड़े वह भी सब वही दे। इस बात के प्रतिकूल कोई उचित आक्षेप नहीं हो सकते कि गवर्नमेंट को प्रजा के द्वारा शिक्षा दिलानी चाहिए। हां; यदि, गवर्नमेंट शिक्षा का सारा प्रबंध अपने ही हाथ में ले ले तो उस प्रबंध के प्रतिकूल आक्षेप जरूर हो सकते हैं। अपने लड़कों को शिक्षा देने के

लिए लोगों को मजबूर करना एक बात है, और शिक्षा-सम्बंधी सारा प्रबंध खुद ही करते बैठना दूसरी बात है। दोनों में बहुत अंतर है। शिक्षा-सम्बंधी सब तरह का या बहुत कुछ प्रबंध खुद करना गवर्नमेंट को उचित नहीं। इस बात को मैं और सब लोगों से भी अधिक बुरी समझता हूं।

स्वभाव की विलक्षणता, मत की भिन्नता और बर्ताव की विचित्रता के महात्म्य के विषय में मैंने जो कुछ कहा है उससे शिक्षा की विचित्रता भी सिद्ध है। सच तो यह है कि शिक्षा की विचित्रता की महिमा और भी अधिक है। वह अनिर्वचनीय है। उसका बयान नहीं हो सकता। जैसे जुदा जुदा राय, बर्ताव और स्वभाव का होना जरूरी है वैसे ही जुदा जुदा तरह की शिक्षा का होना भी जरूरी है, और बहुत जरूरी है। गवर्नमेंट के द्वारा एक ही तरह की शिक्षा का जारी होना मानो सब आदमियों को एक सा कर डालना अथवा एक ही सांचे में ढालना, है। गवर्नमेंट से सम्बंध रखने वाले लोगों में से जिनका पक्ष प्रबल होता है वे जिस तरह के सांचे को पसन्द करते हैं उसी तरह का वह बनता है। अर्थात् उनको जिस सांचे की शिक्षा अच्छी लगती है उसी के देने का वे प्रबंध करते हैं। चाहे राजा प्रबल हो, चाहे धर्म्माधिकारी अर्थात् पादरी-दल प्रबल हो, चाहे सरदार लोग प्रबल हो, चाहे वर्तमान पुश्त में से अधिक आदमियों का कोई समूह प्रबल हो - बात वही होगी। अर्थात् जिसको जिस सांचे की शिक्षा पसन्द होगी वह उसी को जारी करेगा। जो जितना अधिक प्रबल और हुकूमत में जितना अधिक कामयाब होता है उसका सांचा भी उतना ही प्रबल और नमूनेदार होता है। समाज का मन और शरीर उसी के प्रतिबिम्ब हो जाते हैं। अर्थात् मन और शरीर दोनों से सारा समाज उस राजकीय प्रबल पक्ष के हाथ बिक सा जाता है - वह उसका गुलाम सा हो जाता है। यदि गवर्नमेंट अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा देना और उसका प्रबंध-सूत्र भी अपने हाथ में रखना ही चाहे तो नमूने के तौर पर पहले उसे वैसा करना चाहिए। अर्थात् परीक्षा के तौर पर और लोग जैसे जुदा जुदा तरीके से शिक्षा देते हैं वैसे ही गवर्नमेंट को भी करना चाहिए। ऐसा करने से जहां और लोगों के जारी किये हुए शिक्षा के तरीकों की जांच होगी वहां गवर्नमेंट के तरीके की भी हो जायगी और उसके गुण-दोष मालूम हो जायंगे। बहुत ही अच्छा हो यदि गवर्नमेंट अपनी शिक्षा के तरीकों को सबसे उत्तम करके बतलावे, जिसमें और लोगों को उससे उत्साह और उत्तेजना मिले, और वे भी उसी तरीके को आदर्श मानकर अपने अपने तरीके में मुनासिब फेरफार करें। यदि किसी समाज की दशा यहां तक बुरी हो - यदि किसी समाज की उन्नति इस दरजे तक पीछे पड़ी हुई हो - कि शिक्षा की किसी अच्छी रीति को वह निकाल ही न सके, अथवा निकालने की इच्छा ही उसे न हो, तो बात दूसरी है। इस दशा में शिक्षा का प्रबंध गवर्नमेंट को करना ही होगा। जब व्यापार और उद्योग धन्धे के बड़े काम करने की यथोचित शक्ति लोगों में नहीं होती तब लाचार होकर गवर्नमेंट को ही ऐसे काम करने पड़ते हैं। उसी तरह, समाज की हीन दशा में गवर्नमेंट स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय खोलकर उनको जारी रक्खे। समाज की संतति को बिल्कुल ही शिक्षा न मिलना भी बुरा है और एक ही तरह की शिक्षा न मिलना भी बुरा है। परन्तु पहले की अपेक्षा दूसरी बात कम हानिकारक है। इससे जबतक समाज की दशा न सुधरे तब तक थोड़ी हानि ही सही। पर, गवर्नमेण्ट की मदद से शिक्षा देने के लिए यदि देश में काफी आदमी मिलते हों और वे उस काम के लिए लायक भी हों, तो सब लोगों की इच्छा के अनुसार जुदा जुदा तरह की वैसी ही अच्छी शिक्षा देने के लिए भी वे जरूर राजी होंगे। अतएव सब लोगों को अपने अपने लड़कों को शिक्षा देनी

ही चाहिए, इस तरह का एक कानून बनाकर गवर्नमेण्ट को चाहिए कि वह ऐसे आदमियों को उचित उत्तेजन दे और जो लड़के स्कूल का खर्च खुद न दे सकें उन्हें वह खर्च भी देने की उदारता दिखावे। बस गवर्नमेण्ट का कर्तव्य सिर्फ इतना ही है।

यह कायदा जारी करने के लिए - इस कानून को अमल में लाने के लिए गवर्नमेण्ट को चाहिए कि वह थोड़ी ही उम्र में सब बच्चों की परीक्षा का प्रबंध करे। इस काम के लिए यही साधन सबसे अच्छा है। गवर्नमेंट को उम्र की सीमा नियत कर देना चाहिए और देखना चाहिए कि उस उम्र में हरएक बच्चा लिख पढ़ सकता है या नहीं। बच्चे से यहां मतलब लड़का और लड़की दोनों से है। यदि परीक्षा में कोई बच्चा फेल हो जाए अर्थात् वह लिख पढ़ न सके तो, मुनासिब न बतला सकने पर बाप पर गवर्नमेंट नियत दण्ड करे। इस दण्ड को वह, जरूरत समझे तो, बाप से मेहनत के रूप में ले और बच्चे को उसी के खर्च से स्कूल भिजवावे। यह परीक्षा हर साल ली जाय और परीक्षा के विषय धीरे धीरे बढ़ाये जायं। ऐसा करना मानो सब लोगों को मजबूर करना होगा कि उन्हें अपने बच्चों को अमुक दरजे तक अमुक प्रकार की शिक्षा देनी ही चाहिए और उस शिक्षा का संस्कार उनके मन पर होना ही चाहिए। इसके सिवा सब विषयों में ऊंची ऊंची परीक्षायें नियत करनी चाहिए। जिनमें शामिल होना लोगों की खुशी पर अवलंबित रहना चाहिए। जो इन परीक्षाओं को पास कर लें उनका सरटीफिकटें दी जायं। गवर्नमेण्ट को मुनासिब है कि इस परीक्षा-प्रबंध के द्वारा वह जन-साधारण की राय के प्रतिकूल कोई काम न करे। गवर्नमेंट की अनुचित दस्तंदाजी को रोकने के लिए, ऊंचे दरजे तक की परीक्षाओं में, निश्चित शास्त्रों और निश्चित बातों से ही सम्बंध रखने वाले विषय रहें। ऐसा करने से विवाद के लिए जगह न रहेगी। भिन्न मत होने का डर न रहेगा। भाषा और उसके प्रयोग का सिर्फ इतना ही ज्ञान होना चाहिए जितने से परीक्षा के विषयों को समझने और सवालों का जवाब देने का सुभीता हो। धर्म्म, राजनीति या ऐसे ही वादग्रस्त, अर्थात् झगड़े के विषयों में परीक्षा लेते समय इस तरह के सवाल न पूछने चाहिए कि कोई विशेष प्रकार का मत ठीक है या नहीं। सवाल इस तरह के होने चाहिए कि किस ग्रंथकार ने किस आधार पर - किन प्रमाणों के बल पर - अमुक मत का ठीक होना सिद्ध किया है; और उस मत को किस पंथ या किस संप्रदाय ने कुबूल किया है। इस तरह की काररवाई से विवादग्रस्त विषयों के सम्बंध में वर्तमान समय के उन्नतिशील जन-समूह की जैसी स्थिति है वैसी ही बनी रहेगी; उससे बुरा न हो सकेगी। अर्थात् इस तरह की परीक्षाओं के कारण उस स्थिति में कोई फरक न पड़ेगा। उसकी अवनति का डर न होगा। जो लोग सनातन अर्थात् रूढ़ धर्म्म के अनुयायी होंगे उनका उस धर्म की शिक्षा मिलेगी और जो किसी और धर्म्म के अनुयायी होंगे उनका उस धर्म्म की शिक्षा मिलेगी। अर्थात् जिसका जो धर्म्म होगा उसे उस धर्म्म को छोड़ने की शिक्षा न दी जायगी। यदि लड़कों (या लड़कियों) के मां-बाप को कोई उज्र न हो तो जिस स्कूल में और और विषयों से सबंध रखने वाली शिक्षा दी जाए उसी में धर्म्म-सम्बंधी शिक्षा भी दी जाए। जिन बातों के विषय में विवाद है, अर्थात् जो विषय वादग्रस्त हैं, उनके सम्बंध में जन-समुदाय की राय में दस्तंदाजी करने का यत्न करना गवर्नमेंट को मुनासिब नहीं। इस तरह की दस्तंदाजी से बहुत नुकसान होता है। परन्तु किसी भी जानने लायक विषय के सिद्धांत सुनने और समझने भर का ज्ञान विद्यार्थियों को हो गया है या नहीं, इस बात की परीक्षा लेना, और उसमें पास होने पर सरटीफिकेट देना, दस्तंदाजी नहीं कहलाती। जो लोग तत्व

विद्या सीखते हैं उनके लाक और कांती (**Kant**) इन दोनों के सिद्धांतों को जानकर उनमें पास हो जाना हित ही की बात है अहित की नहीं। इस विषय में इस बात की बिल्कुल परवा न करनी चाहिए कि इनमें से किसी के मत से पढ़ने वाले का मत मिलता है या नहीं। विद्यार्थी का मत चाहे इनमें से किसी के मत से मिले, चाहे न मिले लाभ उसे जरूर होगा और बहुत होगा। मेरा तो मत यह है कि क्रिश्चियन धर्म्म के प्रमाणों या तत्वों में यदि किसी नास्तिक की परीक्षा ली जाए तो भी अनुचित नहीं। तो भी इस बात के प्रतिकूल कोई मुनासिब दलील नहीं पेश की जा सकती। पर, हां, इस बात को स्वीकार करने के लिए लाचार नहीं करना चाहिए कि क्रिश्चियन लोगों के धर्म्म-तत्वों पर मेरा विश्वास है। मेरी समझ में ऊंचे दरजे की परीक्षाएं विद्यार्थी की मरजी पर छोड़ देना चाहिए यदि उसकी खुशी हो तो वह इस तरह की परीक्षाएं दे और यदि न हो तो न दे। जितने रोजगार - जितने उद्योग हैं उनके विषय की शिक्षा देने में गवर्नमेंट को दस्तंदाजी न करनी चाहिए। अध्यापकी का काम करने की इच्छा रखने वालों की शिक्षा में भी उसे बाधा न डालनी चाहिए। यदि गवर्नमेंट यह नियम कर दे कि इस पेशे के लोगों को अमुक दरजे तक पढ़ना ही चाहिए तो परिणाम बहुत ही भयंकर होगा। इस विषय में मेरा और हम्बोल्ट का (जिसका जिक्र पहले आ चुका है) मत एक है। मेरी राय यह है कि जो लोग विज्ञान या किसी व्यापार, रोजगार या पेशे की शिक्षा पाकर परीक्षा देना चाहें और परीक्षा में वे पास हो जायं उनको गवर्नमेंट खुशी से सरटीफिकेट और पदक दे। परन्तु जिन लोगों ने ऐसी परीक्षा न पास की हो उनको उनका इप्सित रोजगार करने से रोकना उसे मुनासिब नहीं। यदि सब लोग परीक्षा पास करने वालों को अधिक पसंद करें, अतएव इससे यदि न पास करने वालों का नुकसान हो जाए, तो उपाय नहीं। पर परीक्षा पास करने वालों की जीविका के सुभीते के लिए गवर्नमेंट को विशेष नियम न बनावे; सिर्फ उन्हें सरटीफिकेट या पदक देकर वह चुप हो जाय।

स्वतंत्रता के सम्बंध में लोगों की कल्पनाएं यथास्थान और निर्भ्रम न होने से बहुत हानि होती है। मां-बाप का कर्तव्य है कि वे अपने बाल-बच्चों को उचित शिक्षा दें; परन्तु स्वतंत्रता का ठीक मतलब समझ में न आने के कारण इस कर्तव्य की गुरुता लोगों के ध्यान में नहीं आती। इसीसे शिक्षा के सम्बंध में मां-बाप के लिए किसी तरह का कानूनी बंधन भी नहीं नियत किया जाता। मां-बाप के इस कर्तव्य के पोषक बहुत मजबूत प्रमाण दिये जा सकते हैं - यह नहीं कि कभी किसी विशेष कारण से दिये जा सकते हैं। और मां-बाप पर कानूनी बंधन डालने की जरूरत के भी बहुत से प्रमाण दिये जा सकते हैं। परन्तु स्वतंत्रता का ठीक अर्थ ही लोगों की समझ में नहीं आता। अतएव शिक्षा के विषय में ये पूर्वोक्त दोनों ही बाते नहीं होतीं। यह दशा सिर्फ शिक्षा ही की नहीं है। संसार में मनुष्य के जीवन से सम्बंध रखने वाली महत्व की जितनी बड़ी बड़ी बातें हैं उनमें से एक नये जीव को जन्म देना - अर्थात् संतान उत्पन्न करना - भी एक है। और सच पूछिये तो यह बात बहुत बड़ी जिम्मेदारी की है। जिस जीव को जन्म देना है उसके पालन, पोषण और शिक्षण आदि का उचित प्रबंध करने की शक्ति जिसमें नहीं है उसके लिए इतनी बड़ी जिम्मेदारी लेना मानो उस जीव का बहुत बड़ा अपराध करना है क्योंकि उसका मंगल या अमंगल इसी जिम्मेदारी पर अवलम्बित रहता है। फिर, जिस देश में आबादी बेहद बढ़ रही है या बढ़ने के लक्षण दिखा रही है उस देश में क्षमता से अधिक संतान पैदा करके प्रतियोगिता अर्थात् चढ़ा-ऊपरी के कारण, मजदूरी को निर्ख कम कर देना माना उन सब लोगों का बहुत बड़ा

अपराध करना है जो मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। योरप के किसी किसी देश में यह कायदा है कि जब तक वधू-वर इस बात को सप्रमाण नहीं साबित कर देते तब तक उन्हें विवाह करने की अनुमति नहीं है। गवर्नमेंट के जो कर्तव्य हैं उन्हीं में से यह भी एक है अर्थात् यह उन्हीं के भीतर है, बाहर नहीं। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि इस कायदे को जारी करके- इस कानून को अमल में लाकर - गवर्नमेंट ने अपने कर्तव्यों का अतिक्रमण किया। इस तरह के कायदे समाज की दशा और समाज की राय के अनुसार सुभीते के हो या न हों; तथापि गवर्नमेंट को कोई यह दोष नही दे सकता कि उसने लोगों की स्वतंत्रता में अनुचित रीति पर दस्तंदाजी की। यह एक ऐसा कायदा है - यह एक ऐसा नियम है - कि इसके जारी होने से उन बातों का प्रतिबन्ध होता है जिनसे समाज के अहित होने का डर होता है। अतएव इसमें गवर्नमेंट की दस्तंदाजी बहुत मुनासिब है पर, यदि, किसी विशेष कारण से गवर्नमेंट के द्वारा इस तरह का कानून बनाया जाना मुनासिब न समझा जाय तो भी दण्डनीय व्यक्ति को सामाजिक दण्ड जरूर ही मिलना चाहिए - उसकी छी थू जरूर ही होनी चाहिए। परन्तु स्वाधीनता के सम्बंध में आजकल लोगों के विचार बड़े ही विलक्षण हो रहे हैं। जो बातें आत्म-सम्बंधी हैं, अर्थात् जिसका सम्बंध दूसरों से बिल्कुल ही नहीं है, उनके विषय में यदि किसी की स्वतंत्रता का कोई उल्लंघन करे तो लोग ऐसे उल्लंघन को बरदाश्त भी कर लेते हैं। परन्तु जिन वासनाओं - जिन मनोविकारों - की तृप्ति से, उचित साधन न होने के कारण, भावी संतति को अनेक दुखों और दुर्गुणों में उम्र भर लिप्त होना पड़ता है, और उससे सम्बंध रखने वाले लोगों को भी सैकड़ों आपदाओं का सामना करना पड़ता है, उनके प्रतिबन्ध की यदि कोई जरा भी कोशिश करता है तो लोग उसे बिल्कुल ही नहीं बरदाश्त कर सकते। स्वतंत्रता का कहीं तो इतना आदर और कहीं इतना अनादर! इस तरह का परस्पर विरोध बहुत ही आश्चर्यजनक है। जिन लोगों के विचार इतने परस्पर विरोधी हैं उनकी तुलना करने से यह सिद्धांत निकलता है कि उन्हें दूसरे आदमियों को हानि पहुंचाने का तो अनिवार्य्य अधिकार है पर औरों को हानि न पहुंचाकर खुद सुख से रहने का उन्हें जरा भी अधिकार नहीं।

गवर्नमेंट की दस्तंदाजी की हद क्या होनी चाहिए? कहां तक दस्तंदाजी करने का हक गवर्नमेंट को है? इस विषय में बहुत सी बातें पूछी जा सकती हैं। इस प्रश्न-समूह को मैंने पीछे के लिए रख छोड़ा है; क्योंकि इन प्रश्नों का यद्यपि इस लेख से बहुत घना सम्बंध है तथापि ये इस निबंध के अंशभूत नहीं माने जा सकते। ये ऐसी बातें हैं कि इनके सम्बंध में गवर्नमेंट की दस्तंदाजी स्वतंत्रता के सिद्धांतों के अनुसार अनुचित नहीं ठहराई जा सकती; क्योंकि इन बातों में गवर्नमेंट जो दस्तंदाजी करती है वह लोगों के काम-काज का प्रतिबन्ध करने के इरादे से नहीं करती, क्योंकि सब आदमियों को मदद देने के इरादे से करती है। अब इस बात का विचार करना है कि सब लोगों के फायदे के लिए यदि गवर्नमेंट को काम करना या कराना चाहे तो उसे वैसा करने देना अच्छा है; अथवा सब आदमियों को अलग अलग, या कुछ आदमियों को मिलकर, करने देना अच्छा है।

यदि गवर्नमेंट लोगों के फायदे के लिए कोई काम करना चाहे, और समाज की स्वाधीनता में बाधा डालने का उसका इरादा हो, तो गवर्नमेंट की दस्तंदाजी के विरुद्ध तीन तरह के आक्षेप हो सकते हैं।

पहला आक्षेप यह है कि जिस काम को गवर्नमेंट करना चाहती है वह काम, संभव है, गवर्नमेंट की अपेक्षा हर व्यक्ति- हर आदमी - अधिक अच्छी तरह कर सके। साधारण नियम तो यह है कि जिस काम से जिसके हिताहित का सम्बंध होता है उस काम के विषय में वही इस बात को अच्छी तरह जान सकते हैं कि कब, कैसे और कौन उसे अच्छी तरह कर सकेगा। इस विषय में वे जितने योग्य होते हैं उतना और कोई नहीं होता। पहले इस तरह के कानून बहुधा बनाए जाते थे कि व्यापारियों को किस तरह व्यापार करना चाहिए और व्यापार करने वालों को उसे किस तरह बनाना या बेचना चाहिए। पर पूर्वोक्त सिद्धांत से साबित है कि लोगों की स्वाधीनता में इस तरह की दस्तंदाजी करना सर्वथा अन्याय है। व्यापारशास्त्र के विद्वानों ने इस विषय का पहले ही से बहुत अधिक विवेचन कर डाला है। और इस लेख के तत्वों से इसका विशेष सम्बंध भी नहीं है। अतएव इस विषय को मैं और अधिक लिखने की जरूरत नहीं समझता।

दूसरा आक्षेप इस लेख से अधिक सम्बंध रखता है। इस कारण मैं उसपर विचार करता हूं। यद्यपि यह बात बहुत संभव है कि किसी विशेष काम को गवर्नमेंट के अधिकारी जितनी उत्तमता से कर सकेंगे उतनी उत्तमता से, और लोग मामूली तौर पर, न कर सकेंगे। परन्तु सब लोगों को मानसिक शिक्षा देने के इरादे से उन्हीं से ऐसे काम कराने की अधिक जरूरत है। क्योंकि यदि गवर्नमेंट के अधिकारी ही इस तरह के काम करते रहेंगे तो औरों को उन्हें करने का मौका ही न मिलेगा। अतएव उनके मानसिक शिक्षण में बाधा आवेगी। यदि ऐसे काम उनको दिये जाएंगे तो उनकी कार्यकारिणी शक्ति प्रबल हो उठेगी; वे उन्हें करना सीख जाएंगे। और उनके विषय में उनका ज्ञान भी बढ़ जायगा। राजकीय बातों से सम्बंध रखने वाले मुकद्दमों को छोड़कर और मुकद्दमों में पंचों से सहायता लेना, लोकल बोर्डो और म्युनिसिपलिटियों को यथासंभव स्वाधीनता-पूर्वक काम करने देना, और उदारता और उद्योग के बड़े काम करने के इरादे से सब लोगों को कम्पनियां खड़ी करने देना इत्यादि बातें इसी सिद्धांत पर अवलम्बित हैं। अर्थात् सब लोगों को मानसिक शिक्षा देने ही के लिए ये बातें की जाती हैं। इन बातों का सम्बंध स्वाधीनता से नहीं है, किन्तु सामाजिक सुधार या उन्नति से है। और, यदि, स्वाधीनता से सम्बंध भी है तो बहुत दूर का है। जातीय शिक्षा का अंश समझकर इन बातों का विवेचन इस लेख का उद्देश नहीं है; वह किसी और ही मौके पर शोभा देगा। तथापि यहां पर भी इस विषय में मैं अपने विचार, थोड़े में, प्रकट किये देता हूं। मेरी राय यह है कि इस तरह की शिक्षा देना मानो स्वाधीन देश के निवासियों को राजकीय विषयों की शिक्षा का रास्ता बतलाना है। आदमी का स्वभाव है कि वह अपने कुटुम्ब वालों के ही स्वार्थ की तरफ अधिक नजर रखता है। अतएव राजकीय शिक्षा से उसकी यह आदत, थोड़ी बहुत, छूट जाती है; सार्वजनिक हित की बातों की तरफ उसका ध्यान खिंच जाता है; और उनकी व्यवस्था करने का उसे सबक सा मिलता है। इतना ही नहीं; किन्तु सार्वजनिक अथवा अर्द्ध-सार्वजनिक कारणों की प्रेरणा से काम करने की उसे आदत पड़ जाती है और जिन बातों को ध्यान में रखने से लोग परस्पर एक दूसरे अलग न होकर एक हो जाते हैं वे बातें उसकी समझ में आने लगती हैं। जिस देश के आदमियों में इस तरह के काम करने की आदत और शक्ति नहीं होती उस देश में स्वाधीन सामाजिक संस्था- स्वाधीन राजकीय सत्ता - का चलना असंभव होता है। और, यदि, वह चलती भी है तो अच्छी तरह और बहुत दिनों तक नहीं चलती। उदाहरण के लिए उन देशों को देखिए जहां स्थानिक राजकीय काम करने का मौका सब

लोगों को नहीं मिलता। अतएव होता क्या है कि सब लोगों को राजकार्यविषयक स्वतंत्रता मिल भी जाती है तो वह बहुत दिन तक नहीं ठहरती। स्वतंत्रतापूर्वक हर आदमी की बढ़ती होने और अनेक तरह से अनेक आदमियों के द्वारा एक ही काम के किये जाने, से जो फायदे होते हैं उनका जिक्र इस लेख में आ चुका है। अपने स्थान, गांव, या शहर के राजकीय काम यदि सब लोग खुद करेंगे और कम्पनियां खड़ी करके, बहुत सा रुपया लगाकर, यदि वे बड़े बड़े व्यापार खुद करने लगेंगे तो जिन फायदों का जिक्र ऊपर हो चुका है वे उन्हें जरूर होंगे। इसी से बहुत आदमियों का मिलकर बनिज-व्यापार करना और स्थानिक कामों को खुद ही चलाना बहुत जरूरी बात है। गवर्नमेंट के जितने काम होते हैं उतने अकसर एक ही तरह के होते हैं; उनका सांचा - उनका नमूना - सब कहीं अकसर एक ही सा होता है। पर जो काम हर आदमी अलग अलग, या दस पांच आदमी मिलकर कम्पनी के रूप में, करते हैं उनके सांचे एक से नहीं होते। उनका तरीका हमेश जुदा जुदा होता है। इसीसे उनके तजरुबे भी जुदा जुदा होते हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि उनके तजरुबों की - उनके अनुभवों की - हद ही नहीं होती। ऐसे तजरुबे हमेशा विचित्रता से भरे हुए होते हैं। अतएव सब लोगों को फायदा पहुंचाने के लिए गवर्नमेंट को चाहिए कि वह समाज, अर्थात् जन-समूह, की कोठी या अमानत-खाने का काम करे। अर्थात् जुदा जुदा आदमियों के जो जुदा जुदा तजरुबे हों वे उसके पास जमा रहें - उनकी खबर उसे मिलती रहे और वह उन तजरुबों को सब लोगों में बराबर प्रचार करती रहे। उसका काम है कि हर तजरुबेकार को वह दूसरों के तजरुबों से फायदा पहुंचावे। उसे इस बात का कभी आग्रह न करना चाहिए कि जो रास्ता उसे पसंद हो उसी पर सब लोग चलें।

तीसरा और सबसे प्रबल आक्षेप यह है कि यदि गवर्नमेंट सब लोगों के काम-काज में दस्तंदाजी करने लगेगी तो उसकी सत्ता व्यर्थ बढ़कर, बड़े बड़े अनर्थों का कारण होगी। इसलिए उसकी दस्तंदाजी को रोकने की बहुत बड़ी जरूरत है। जैसे जैसे गवर्नमेंट की सत्ता बढ़ती है, अर्थात् जो काम गवर्नमेंट कर रही है उन कामों की संख्या जैसे जैसे अधिक होती है, वैसे सब लोग अधिकाधिक गवर्नमेंट की आंखों से देखते हैं - वैसे ही वैसे वे उसपर और भी अधिक अवलम्बित हो जाते हैं। इस दशा में लोगों की समझ अधिकाधिक यह हो जाती है कि हमको सुख, दुःख, भय और आशा आदि की आशा देने वाली सिर्फ एक हमारी गवर्नमेंट ही है, और कोई नहीं। वही जो चाहे करे। अतएव जो लोग अधिक महात्वाकांक्षी और उद्योगी होते हैं वे गवर्नमेंट के आश्रित बन जाते हैं - वे उसकी अधीनता स्वीकार करके उसकी नौकरी कर लेते हैं। सड़कें, रेल, बैंक, बीमे के दफ्तर, बहुत लोगों के मेल से बनी कम्पनियां, विश्वविद्यालय और सब लोगों के फायदे के लिए स्थापित किये गए धार्मिक समाज यदि गवर्नमेंट के प्रबंध से चलने लगें; इसके सिवा म्युनिसिपालिटी और लोकल बोर्ड जो काम करते हैं वह भी यदि गवर्नमेंट ही करने लगे और इन सब महकमों और दफ्तरों इत्यादि में जो लोग काम करते हैं उनको नियत करना, उनकी तरक्की या तनज्जुली करना और उनको हर महीने तनख्वाह भी देना यदि गवर्नमेंट ही का काम हो जाय; तो अखबारों को चाहे जितनी स्वतंत्रता हो और कानून बनाने वाली कौंसिल में प्रजा के चाहे जितने प्रतिनिधि हों, वह देश सिर्फ नाम ही के लिए स्वतंत्र कहा जा सकेगा। ऐसे देश में राज्य-प्रबंधरूपी यंत्र जितना अधिक सुव्यवस्थित और कौशल्य-पूर्ण अर्थात् पेंचदार होगा - उसे चलाने के लिए खूब चतुर अधिकारी ढूंढ़ने की रीति जितनी अधिक निपुणतापूर्ण होगी - उतना ही अधिक अनर्थ होने

की संभावना भी बढ़ेगी। कुछ दिन से इंगलैंड में इस बात पर विचार हो रहा है कि गवर्नमेंट के दीवानी महकमें में जितने आदमियों की जरूरत हो उतने प्रतियोगिता, अर्थात् चढ़ा-ऊपरी, की परीक्षा लेकर चुने जायं। इस सूचना के अनुकूल भी बहुत कुछ चर्चा हुई है और प्रतिकूल भी। अर्थात् किसी किसी के मत में इस तरह की परीक्षा लेकर अधिकारियों के चुनने में लाभ है और किसी किसी के मत में नहीं है। जो लोग इस सूचना के प्रतिकूल हैं उनकी दलीलों में सबसे अधिक मजबूत दलील यह है कि गवर्नमेंट के नौकरों को अच्छी तनख्वाह नही मिलती और उनके पद, अधिकार या जगह का महात्म्य भी अधिक नहीं होता। इससे अत्यधिक गुणी, विद्वान और बुद्धिमान लोग प्रतियोगिता की परीक्षा में शामिल न होंगे। किसी कम्पनी में नौकरी कर लेना अथवा खुद ही कोई व्यापार या व्यवसाय करना उनके लिए अधिक लाभदायक होगा। अतएव वे गवर्नमेंट की नौकरी की क्यों परवा करेंगे? वे लागे प्रतियोगिता की परीक्षा के प्रतिकूल हैं उनके मुख्य आक्षेप के उत्तर में यदि अनुकूल पक्ष वाले यह दलील पेश करते तो कोई आश्चर्य की बात न थी। परन्तु आश्चर्य की बात इसलिए है कि प्रतिकूल पक्ष वाले ऐसा कहते हैं। क्योंकि प्रतिकूल पक्ष वालों की राय में चढ़ा-ऊपरी की परीक्षा से जो बात न होगी उसीके होने की अधिक संभावना है। जिस कल्पना को काम में लाने से देश की सारी बुद्धिमत्ता सब कहीं से खिंचकर गवर्नमेंट के अधीन हो सकती हो उसे सुनकर दुःख होना चाहिए। यदि सभी बुद्धिमान आदमी लालच में आकर गवर्नमेंट की सेवा करने लगेंगे तो बात बहुत अनर्थकारक होगी। समाज के जिन कामों में सुव्यवस्था, दूरदर्शीपन, एका और गंभीर विचारों की जरूरत होती है वे यदि गवर्नमेंट के हाथ में चले गए, और यदि प्रायः सभी तीव्र बुद्धि के आदमी गवर्नमेंट की नौकरी करने लगे तो, दो चार तत्वज्ञानियों को छोड़कर देश के सारे शिक्षा सम्पन्न और विद्वान आदमियों को, हर बात के लिए, उसी महकमे का मुंह ताकना पड़ेगा। जो कुछ वह कहेगा वही उन्हें करना पड़ेगा, और जो लोग चालाक और महत्वाकांक्षी होंगे उनको भी अपनी उन्नति के लिए - अपने स्वार्थ साधन के लिए - उसी का आश्रय लेना पड़ेगा। इस सर्व-शक्ति-सम्पन्न जन-समूह या महकमे में भरती होना, और, होने के बाद धीरे धीरे अपनी तरक्की करना ही सब लोग की महत्वाकांक्षा की चरम सीमा हो जायगी। यदि इस तरह का कोई महकमा सचमुच ही बन जाय - यदि इस तरह की कोई व्यवस्था सचमुच ही हो जाय - तो और लोगों को किसी भी महत्वपूर्ण विषय में तजरुबा हासिल करने का मौका ही न मिलेगा और इस जन-समूह के कार्यकर्ताओं के कामों की आलोचना करने, और प्रतिबंधपूर्वक उसे एक मुनासिब हद के भीतर रखने, की उनमें शक्ति ही न रह जायगी। इतना ही नहीं; किन्तु और भी अनर्थ होंगे। जहां ऐसी व्यवस्था होती है वहां किसी अन्याय-संगत काम के सहसा हो जाने या मामूली तौर पर कोई कारण देख पड़ने से यदि राजा या राजसत्ताधारी कोई और व्यक्ति किसी तरह की कोई उन्नति या सुधार भी करना चाहता है तो उसे कामयाबी नहीं होती। हां, यदि, कोई सुधार उस महकमेशाही के फायदे का हो तो बात दूसरी है। रूस के राज्यप्रबंध की यही दशा है। उसे याद करके दुःख होता है। जिन लोगों को वहां की राज्य-व्यवस्था की जांच करने का मौका मिला है उनकी यही राय है। इस महकमेशाही के मुकाबिले में खुद रूस-नरेश, जार, भी कोई चीज नहीं है। उस बेचारे की कुछ भी नहीं चलती। अपने अधिकारियों में से - अपने मंत्रियों में से जिसे वह चाहे उसे साइबेरिया के काले पानी को भेज सकता है। उसमें इतनी शक्ति जरूर है। परन्तु इन लोगों की इच्छा के विरुद्ध, या इनकी मदद के बिना, वह राज्य ही नहीं कर सकता - वह कोई काम ही नहीं कर सकता। राज्य के अधिकारी इतने प्रबल हैं कि वे

यदि चाहें तो, जार की बात पर ध्यान ही न दें; यहां तक कि वे, यदि इच्छा करे तो, उसके हुक्म पर भी हड़ताल लगा दें। जो देश रूस की अपेक्षा अधिक सुधरे हुए हैं और जहां लोगों के मन में विद्रोह की वासना अधिक रहती है वहां, अधिकारियों की प्रबलता होने से, सब आदमियों की यह इच्छा रहती है कि उनके सारे काम गवर्नमेंट ही कर दे। अथवा, कम से कम, वे इतना जरूर चाहते हैं कि, पूछने पर अपने सब काम करने के लिए उनको गवर्नमेंट अनुमति ही न दे। किन्तु वह यह भी बतला दे कि वे लोग उन सब कामों को किस तरह करें। अतएव यदि उनपर कभी कोई विपत्ति आती है तो उसके लिए वे अधिकारियों ही को जिम्मेदार समझते हैं। यदि कदाचित आई हुई विपत्ति उन्हें असह्य हुई तो वे विद्रोह कर बैठते हैं और वर्तमान गवर्नमेंट के प्रतिकूल काम करते हैं। जब बात इस नौबत को पहुंच जाती है तब राजा या सत्ताधारी किसी और व्यक्ति को अपना आसन छोड़ना पड़ता है, उसकी जगह कोई और आदमी - चाहे उसे सब लोगों की तरफ से राज्य करने का अधिकार मिला हो चाहे न मिला हो - जा बैठता है। वह भी महकमेशाही के अधिकारियों पर हुक्म चलाने लगता है और सब बातें प्रायः पूर्ववत होने लगती हैं। वह अधिकारी-मंडली - वह महकमेशाही - जैसी की तैसी बनी रहती है, क्योंकि उनका काम करने की योग्यता ही किसी में नहीं रह जाती।

पर, अपना काम आप ही करने की आदत जिन लोगों की होती है उनकी स्थिति और ही तरह की होती है; उनमें और ही बातें देख पड़ती हैं। फ्रांस को देखिए यहां बहुत से आदमी ऐसे हैं जिन्होंने फौज में नौकरी की है। उनमें से कितने ही ऐसे भी हैं जो उहदेदार रहे हैं; अतएव कोई सार्वजनिक दंगा, फसाद या विद्रोह होने पर अगुआ बनने, और लड़ाई छिड़ जाने पर उसकी व्यवस्था करने, के लायक कुछ लोग वहां जरूर पाए जाते हैं। जैसे लड़ाई के काम में फ्रांस वाले हमेशा तैयार रहते हैं वैसे ही मुल्की मामलों और उद्योग के कामों में अमेरिका वाले तैयार रहते हैं। यदि अमेरिका की गवर्नमेंट नष्ट हो जाय, और सब लोग बिना गवर्नमेंट के छोड़ दिये जायं, तो वे लोग तुरन्त ही दूसरी गवर्नमेंट बना लें। उनमें से हर आदमी इस काम को योग्यता से कर सकता है। वे लोग किसी भी मुल्की मामले या सार्वजनिक उद्योग के काम को बुद्धिमानी सुव्यवस्था और निश्चय से करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। जिस देश के लोग स्वाधीन हैं - जो देश स्वतंत्र कहा जाता है - वहां आदमियों में इन बातों का होना बहुत जरूरी है। और जिन लोगों में ये गुण होंगे वे अवश्य ही स्वाधीन होंगे; वे कभी पराधीन होकर न रहेंगे। राज्य रूपी घोड़े की लगाम पकड़कर उसे अपने हाथ में रखने वाले एक या अनेक आदमियों की गुलामी ये लोग कभी पसन्द न करेंगे। राज्यसूत्र को हाथ में रखने ही के कारण ये लोग अधिकारियों की पराधीनता कदापि बरदाश्त करने के नहीं। ऐसे देश में कोई महकमेशाही या अधिकारी-मंडली इस तरह के स्वतंत्र- स्वभाव वाले आदमियों से कोई काम, उनकी इच्छा के विरुद्ध, नहीं करा सकती है और न कोई काम करने से उन्हें रोक ही सकती है। परन्तु जहां सब काम अधिकारियों ही के द्वारा होते हैं वहां उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसे देश में जितने अनुभवशील काम-काज करने लायक लोग होते हैं उन्हीं का समुदाय राज्य की सारी व्यवस्था करता है; वही राज्य चलाता है; बाकी के सब आदमियों पर हुकूमत करता है। यह समुदाय जितना अधिक प्रबल होता है; समाज के सब वर्गों में से जितने अधिक लायक और बुद्धिमान आदमी नौकरी की लालच से इस समाज में शामिल होते हैं; और उनमें प्रवेश पाने के लिए जिस तरह की शिक्षा दरकार है उस तरह की शिक्षा को लोग जितना अधिक

प्राप्त करते हैं; पराधीनता की उतनी ही अधिक वृद्धि देश में होती है – उतना ही अधिक सब लोग गुलामी के पंजे में फंसते हैं। अधिकारी लोग भी इस फांस से नहीं बचते; उनको भी गुलाम बनना पड़ता है। क्योंकि, जिस तरह, सब साधारण आदमी अधिकारी-मंडल के दास होकर रहते हैं उसी तरह अधिकारियों को भी अपनी महकमेशाही के कायदे-कानून का दास होना पड़ता है। इस विषय में चीन का उदाहरण ध्यान में रखने लायक है। वहां के बहुत बड़े अधिकारी मन्दारिन कहलाते हैं। ये मन्दारिन और मामूली किसान, दोनों, वहां की राज्य-पद्धति के एक से गुलाम हैं। जेसुइट लोगों ने जो पंथ चलाया है उसे उन्होंने अपने फायदे – अपनी उन्नति के लिए चलाया है। परन्तु इस पंथ का प्रत्येक आदमी अपने ही बनाए हुए नियमों का सबसे बड़ा दास हो गया है।

फिर, इस बात को भी न भूलना चाहिए कि यदि देश भर के बुद्धिमान, चतुर और योग्य आदमी गवर्नमेंट के नौकर हो जायंगे तो एक न एक दिन मानसिक ही नहीं किन्तु शारीरिक उन्नति का भी ह्रास शुरू हो जायगा। जितने गवर्नमेंट के नौकर होते हैं वे किसी न किसी महकमे से जरूर संबंध रखते हैं। और सारे महकमे अपनी स्थिति के अनुसार बंधे हुए नियमों के अनुसार काम करते हैं। इसका फल यह होता है कि अधिकारी और कर्म्मचारी लोग आलसी हो जाते हैं और एक मुद्दत के बने हुए रास्तों से जाने की उन्हें आदत हो जाती है। यदि कदाचित गवर्नमेंट के महकमेशाही के किसी आदमी के सिर में कोई नई बात सूझी तो बाकी के सब लोग, कोल्हू के बैल की सी अपनी पुरानी राह छोड़कर उस नई बात की तरफ दौड़ पड़ते हैं। पर वे उसको जांचने की तकलीफ नहीं उठाते कि वह ठीक है या नहीं। देखने में भिन्न, पर यथार्थ में, एक ही रास्ते से जाने वाले इन गवर्नमेण्ट के नौकरों को मानसिक और शारीरिक ह्रास से बचाने और उनकी बुद्धि को तेज बनाये रखने, का साधन सिर्फ यह है कि उनके काम काज की खूब अच्छी समालोचना कर के उन्हें ठीकाने पर लाने के लिए देश में महकमेशाही के बाहर स्वंतत्र स्वभाव के कुछ आदमी रहें। अतएव इस बात की बड़ी जरूरत है कि देश में ऐसे भी साधन रहें – ऐसे भी उद्योग, धंधे, कल, कारखाने इत्यादि खुलें। जो गवर्नमेण्ट के मुहताज ना हों। इससे क्या होगा जो लोग उनसे सम्बन्ध रक्खेंगे उनको बड़े बड़े कामों के गुण-दोष समझने का मौका मिलेगा और इनका तजरुबा भी बढ़ेगा। उन लोगों बुद्धि में तेजी आजायगी और वे गवर्नमेण्ट के अधिकारियों के काम को खूब अच्छी समालोचना कर सकेंगे। यदि किसी की यह इच्छा हो कि गवर्नमेण्ट के अधिकारी होशियार और लायक हों, नई नई उपयोगी बातों को निकाल सकें, और दूसरों की बतलाई हुई उन्नतिशील युक्तियों को मान भी लें; अथवा यदि कोई यह चाहे कि गवर्नमेण्ट के अधिकारियों और कर्म्मचारियों का महकमा सिर्फ पण्डितमानी या विद्यादाम्भिक आदमियों का समूह ना बन जाय; तो उसे चाहिये कि जिन व्यवसायों को – जिन उद्योगों को – करने से मनुष्य- जाति पर हूकूमत करने के योग्य गुण प्राप्त होते हैं उन सब को वह गवर्नमेंण्ट के अधिकार में न जाने दे।

आदमी की स्वतंत्रता और उन्नति को बहुत बड़ी बाधा पहुंचाने वाली अनेक आपदायें हैं- अनेक अनिष्ट हैं- अनेक विघ्न हैं। परन्तु इन आपदाओं का आरम्भ कब होता है, यह एक प्रश्न हैं। और राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले जितने विशेष जटिल और मुशकिल प्रश्न हैं उन्हीं में से एक यह भी है। इसी प्रश्न को लोग दूसरी रीति से भी पूछ सकते हैं – अर्थात् अपने सुख के बाधक विघ्नों को दूर करने के लिए समाज, अपने मुखिया

मनुष्यों के समुदाय के रुप में, जो गवर्नमेण्ट (अर्थात् राजसभा) नियत करता है उससे होने वाले हित की अपेक्षा अनहित की मात्रा कब अधिक होने लगती है, इस प्रश्न का उत्तर देना मानों इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है कि देश में जितने बुद्धिमान, सुशिक्षित और चतुर आदमी हों उनमें से मतलब से अधिक आदमियों को गवर्नमेण्ट के अधीन न होने देकर, उन सब की एकीभूति बुद्धि चतुरता और शक्ति से जितना हो सके उतना अधिक फायदा उठाना चाहिए। यह एक ऐसा प्रश्न है कि इसका उत्तर देने में अनेक छोटी छोटी बातों पर विचार करना पड़ता है और उसके अनेक छोटे छोटे भेदों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। अएतव इस सम्बन्ध में कोई सर्व-व्यापक नियम नहीं किया जा सकता। परन्तु मेरी समझ में जिस व्यवहारिक बात का जिक्र मैं करने जाता हूं उसे ध्यान में रखने से - उसका अनुकरण करने से - आये हुए विघ्न और अनिष्ट दूर हो जायंगे। उस के अनुसार काम करने से आपदाओं से रक्षा होगी। उसे आदर्श मान कर सामने रखने से अहित होने का डर ना रहेगा और सब काम व्यवस्थित रीति से चला जायगा। वह तत्व यह है कि राजसत्ता से सम्बन्ध रखने वाला अधिकार, जहां तक हो सके, अधिक आदमियों को बांट देना चाहिए। पर ऐसा करने में इस बात का खयाल रखना चाहिए कि अधिकारियों को अपना कर्तव्य पूरा करने में किसी तरह की बाधा न आवे- अर्थात् अपना अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए उन लोगों के पास जो अधिकार और साधन हों उनमें कमी न होने पावे। एक बात यह और होनी चाहिए कि, जहां तक हो, राज्य-विषयक सारी बातें एक मुख्य अधिकारी के पास पहुंचे और उसके पास से और लोगों को वे प्राप्त हो सकें। उदाहरण के लिए अमेरिका न्यू इंगलैंड नामक सूबे को देखिए। वहां की म्यूनिसिपालिटी का प्रबन्ध बहुत अच्छा और नमूनेदार हैं। जहां म्यूनिसिपालिटी होती है वहां वाले अपनी तरफ से मेम्बर चुनते हैं और उसको सब काम, थोड़ा-थोड़ा बांट देते हैं। वह काम मेम्बरों और कर्म्मचारियों ही पर नहीं छोड़ दिया जाता। हर एक महकमें में देखभाल करने वाला एक दफ्तर अलग होता है। इस दफ्तर का मुख्य अधिकारी सब म्यूनिसिपालिटियों के कायदे निर्ख और रदबदल इत्यदि बातों से सम्बन्ध रखने वाले कागजात अपने दफ्तर में रखता है। दूसरे देशों की म्यूनिसिपालिटियों में जानने लायख जितने रद-बदल होते हैं उनकी भी वह खबर रखता है। यहीं नहीं, किन्तु राजनीति-शास्त्र के मामूली सिद्धातों से भी वह अपना परिचय बनाये रखता है। देशभर में जितनी म्यूनिसिपालिटियां होती हैं उनके दफतरों की जांच करने, और जो कुछ उनमें होता है उसे जानने का इस अफसर को पूरा अधिकार रखता हैं। जो बातें सब लोगों के जानने लायक होती है। उनको उसे देशभर में फैलाना भी पड़ता है। इस बात की जिम्मेदारी उसके सिर रहती है। हर जगह हर दफ्तर का जो अधिकारी होता है उसे स्थानिक कारणों से, किसी किसी बात में, अनुचित आग्रह हो जाता है। अथवा उसकी राय संकुचित हो जाती है। पर सबसे बड़े दफ्तर के प्रधान अधिकारी का पद और अधिकारियों के पद से ऊंचा होता है। औरों की अपेक्षा बहुत अधिक बातें भी उसे सुनने को मिलती हैं। अतएव वह किसी विषय में अनुचित आग्रह नही करता और न उसकी राय ही संकुचित होती है। इससे उसकी सूचनाओं को लाभदायक और मान्य समझ कर नीचे दरजे के सब अधिकारी खुशी से कुबूल करते हैं। परन्तु ऐसे मुख्य अधिकारी का अधिकार इतना बढ़ा चढ़ा हुआ ना होना चाहिए कि उसके बल पर जो काम वह कराना चाहे उसे वह जबरदस्ती करा सके। बलप्रयोग का अधिकार- किसी को लाचार करने का अधिकार- उसे मिलना मुनासिब नहीं। इस विषय में उसको सिर्फ इतना ही अधिकार होना चाहिए कि म्यूनिसिपालिटी के सम्बन्ध में जितने

कायदे-कानून बनाये गये हों उनकी तालीम वह और अधिकारियों से करा सके। पर जिन बातों के विषय में कोई कायदे नहीं बनाये गये उन्हें करना या न करना उसे अधिकारियों ही की मर्जी पर छोड़ देना चाहिए। उनके लिए वह जिम्मेदार हैं। जिन लोगों ने यथानियम अधिकारियों को चुना है वे खुद ही ऐसे मामलों की देखभाल कर लेंगे। जो जनसमुदाय, या जो कौन्सिल, कानून बनाती है उसे चाहिऐ कि वह म्यूनिसिपालिटी से सम्बन्ध रखने वाले कानून भी बनावे और यदि कोई उन्हें अमल में ना लावे, या किसी प्रकार उनको भंग करे, उसे वह सजा भी दे। मुख्य अधिकारी का काम यह देखने का है कि सब कर्म्मचारी कानून के अनुसार अपना अपना काम करते है या नहीं। यदि वह देखे कि कोई कर्म्मचारी कानून को अमल में नहीं लाता है, या उसके किसी अंश को वह भंग करता है। तो अपराध के गौरव-लाघव पर विचार करके, उस कर्म्मचारी को सजा दिलाने के इरादे से या तो मैजिस्ट्रेट से प्रार्थना करे, या जिन लोगों ने उस कर्मचारी को रक्खा हो उनसे, उसे निकाल देने के लिए, वह सिफारिश करे। इस देश में गरीब आदमियों के पालन-पोषण के विषय में एक कानून है। यह कानून मुनासिब तौर पर अमल में लाया जाता है या नहीं- इस बात की देखभाल करने के लिए एक व्यवस्थापक सभा है।

इस सभा को जो अधिकार मिले हैं वे उसी तरह के हैं जिस तरह के अधिकारों का वर्णन यहां पर मैंने किया है। गरीब आदमियों के फण्ड, अर्थात् चन्दे की व्यवस्था करने के लिए जो कर्म्मचारी नियत है उन पर अच्छी तरह देखभाल रखना इस सभा का काम है। इस सभा को कुछ अधिकार इससे भी अधिक मिले हैं। परन्तु इसका कारण यह है कि, यहां गरीबों के पालन पोषण के विषय में, कहीं कहीं, अधिक अव्यवस्था हो गई थी और वह खूब मजबूत हो गई थी - उसने जड़ पकड़ ली थी। मुफ्तखोर कंगलों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उनसे किसी एक ही जगह, या शहर, के आदमियों को तकलीफ न होती थी; किन्तु यह कंगले आस-पास के गांवों तक में पहुंच जाते थे और सब लोगों को तंग करते थे। किसी शहर, कसबे या गांव की म्यूनिसिपालिटी को यह अधिकार नहीं है कि अपने कर्म्मचारियों की अव्यवस्था या बदइन्तजामी से वह कंगलों को दूसरे शहर या गांव में फैल जाने दे और उनके द्वारा वहां वालों की तकलीफ का वह कारण हो। अतएव इस अनाचार- इस अव्यवस्था, को रोकने, और कंगालखानों के पास-पड़ोस के मजदूर आदमियों की नीति को बिगाड़ने से बचाने, के लिए यहां की व्यवस्थापक सभा को कुछ अधिकार देने की जरूरत पड़ी। विशेष व्यापक कानून बनाने और अपराधियों को दूर तक दमन करने की जो शक्ति इस देश की व्यवस्थापक सभा को मिली है वह सर्वथा न्याय्य है; क्योंकि देशभर के हिताहित से उसका सम्बन्ध है। परन्तु सब लोगों की राय इस बढ़ी हुई शक्ति के अनुकूल नहीं है। इससे यह सभा अपनी इस शक्ति को कम काम में लाती है। परन्तु इसके न्यायसंगत होने में कोई सन्देह नहीं हैं। हां यदि - किसी एक ही आध शहर या गांव को कंगलों के उपद्रव से बचाने के लिए यह शक्ति दी गई होती तो बात दूसरी थी। मेरी राय में हर महकमे के लिए एक ऐसे दफ्तर की जरूरत है जिसमें उस महकमे के सब दफ्तरों की रिपोर्टें पहुंचा करे और जहां से और लोगों को उस महकमे से सम्बन्ध रखने वाली सब बातें मालूम हो जाया करें। गवर्नमेण्ट को चाहिए कि वह ऐसा प्रबंध करे जिसमें हर आदमी को अपना काम उद्योग और उत्साहपूर्वक करने की उत्तेजना मिले। कोई बात ऐसी न हो जिस में किसी के उद्योग और उत्साह की वृद्धि में किसी तरह का विघ्न आवे। इस बात का जितना अधिक

ख्याल गवर्नमेण्ट रक्खे उतना थोड़ा ही समझना चाहिए। यदि जुदा जुदा हर आदमी के, या अनेक आदमियों के, समुदाय के उद्योग और बल को उत्साह देने के बदले गवर्नमेण्ट खुद ही अपने उद्योग को बढ़ाने लगे; अथवा यदि उन लोगों को सब बाते बतलाने, सलाह देने और उनसे कोई भूल हो जाने पर उसे उनके गले उतार देने के बदले, हथकड़ी और बेढ़ी के जोर पर वह उनसे जबरदस्ती काम लेने लगे; अथवा यदि उनको एक तरफ हटा कर अर्थात् उनकी परवाह ना करके - उनको तुच्छ समझकर- उनका काम गवर्नमेण्ट खुद ही करने लगे, समझना चाहिए कि उसने अपने अधिकार की सीमा का उल्लंघन किया। अतएव यह निश्चित जानना चाहिए कि उसी समय से अनर्थ का आरम्भ हुआ। किसी देश - किसी राज्य - की कीमत या योग्यता उन लोगों की कीमत या योग्यता पर अवलम्बित रहती है जो उस देश में रहते हैं। अर्थात् प्रजा जितनी ही योग्य और सुशिक्षित होगी राज्य व्यवस्था भी उतनी ही उत्तम, दृढ़ और बलवती होगी। अतएव जो गवर्नमेंट प्रजा की मानसिक वृद्धि और यथेष्ट उन्नति की तरफ पूरा ध्यान ना देकर प्रजा की छोटी बातों में सिर्फ इसलिए दखल देती है जिसमें वे बातें कुछ अधिक योग्यता से की जाएं, अथवा अनुभव के आधार पर बनाए गये काम-काज करने के नियमों के अनुसार ही लोग उन्हें करें, उसे पीछे से अफसोस होता है। जो गवर्नमेंट प्रजा की मानसिक वृद्धि की तरफ दुर्लक्ष्य करती है और उसे अपना गुलाम समझकर इसलिए दुर्बल कर देती है जिसमें वह गवर्नमेंट की आज्ञा के अनुसार सारे काम - फिर चाहे वे प्रजा के फायदे ही के लिए क्यों न हों - चुप चाप किया करे उसे, कुछ दिनों में यह बात अच्छी तरह मालूम हो जायगी कि छोटे आदमियों से - अर्थात् जिनमें बहुत थोड़ी बुद्धि है उनसे - बड़े-बड़े काम कभी नहीं हो सकते। उसके ध्यान में यह बात भी आ जायगी कि जिस राज्यरूपी पेंच को अच्छी तरह चलाने - जिस महकमेशाहीरूपी यंत्र को सफाई से जारी रखने - के लिए उसने प्रजा का इतना नुकसान किया वह यंत्र अब अधिक दिन तक नहीं चल सक्ता। क्योंकि जब प्रजा की वृद्धि, उद्योगशीलता और शक्ति का सर्वथा ह्रास ही हो जायगा। तब उस यंत्र को चलावेगा कौन? अतएव वह जरूर ही बंद हो जायगा।